अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष- 43, अंक- 11, 16-31 जनवरी 2020

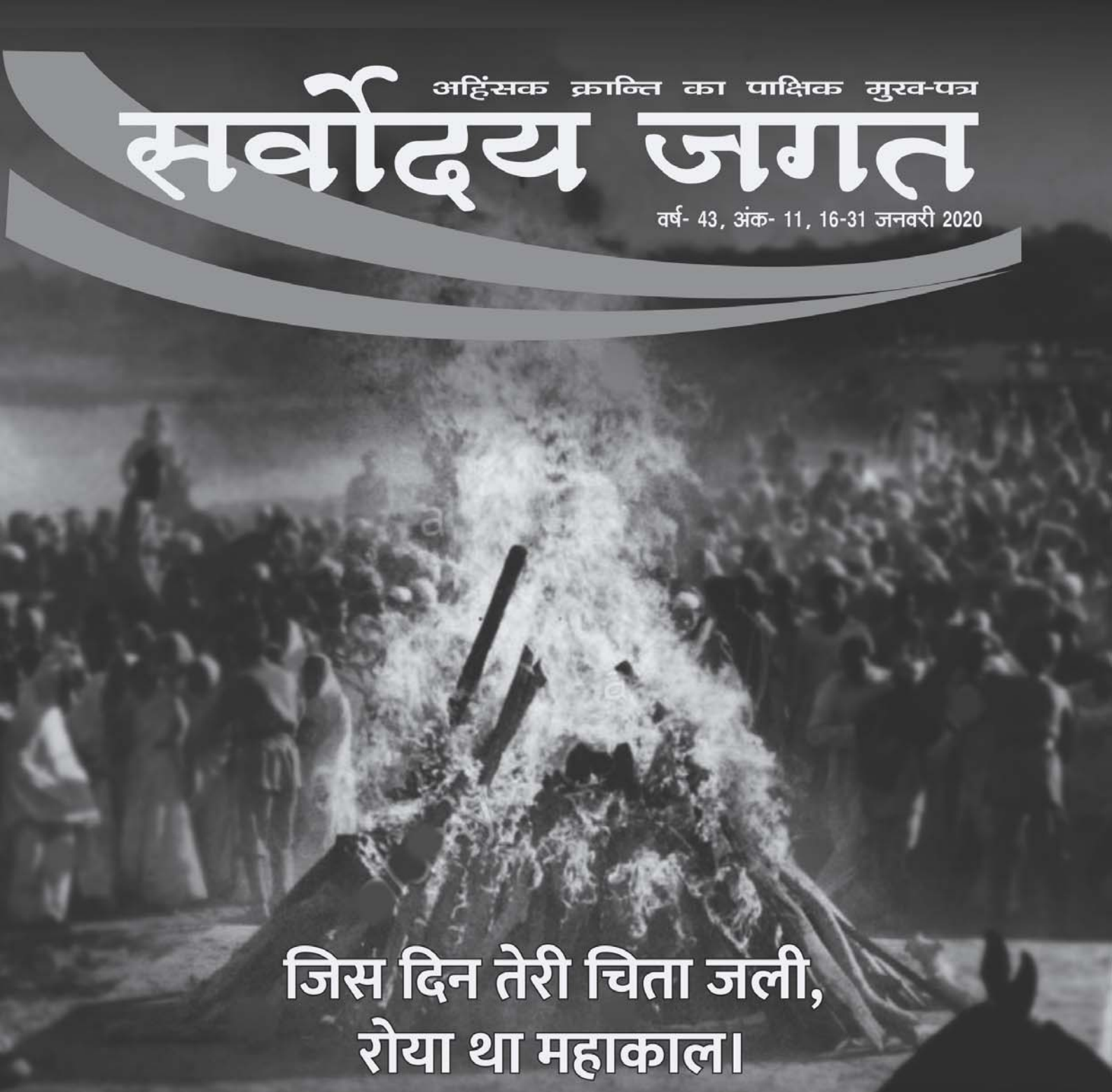

जिस दिन तेरी चिता जली, रोया था महाकाल।

वह ज्योति चली गयी, जिसने लोगों के अंधकारमय जीवन को रोशनी दी। चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा है। मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि मैं आप लोगों से क्या कहूं और कैसे कहूं। हम सबके प्यारे नेता, जिन्हें हम बापू कहते थे, हमारे राष्ट्रपिता अब नहीं रहे। हमारे सिर से उनका साया चला गया। बापू ने देश को जो प्रकाश दिया था, वह कोई सामान्य नहीं था, वह जीवन जीने का मंत्र देने वाली ज्योति थी। उस रोशनी ने देश के कोने-कोने में उजाला फैलाया। सम्पूर्ण विश्व ने इसे देखा। उनके सत्य, प्रेम, अहिंसा के दीपक हमेशा इस देश के लोगों को अपनी रोशनी देते रहेंगे।

30 जनवरी 1948

-पं. जवाहरलाल नेहरू

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक
वर्ष : 43, अंक : 11, 16-31 जनवरी 2020

अध्यक्ष
महादेव विद्रोही
संपादक
बिमल कुमार
सहसंपादक
प्रेम प्रकाश
09453219994
संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'
प्रो. सोमनाथ रोडे अरविन्द अंजुम,
रमेश ओझा अशोक मोती

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

एक प्रति	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC Code : UBIN0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. संपादकीय... 2
2. प्रतिपल...प्रतिक्षण... 3
3. एक रहबर चला गया... 4
4. मानवता के प्राण गांधी... 5
5. गांधी हत्या के सात प्रयास... 5
6. हत्यारों को नायक बनाने की कवायद... 6
7. मजबूरी का नहीं, मजबूती का नाम... 7
8. गांधीजी के बारे में प्रचलित भ्रांतियां... 9
9. अध्यक्ष की कलम से... 12
10. किसी का प्राणहरण भी अहिंसक हो... 13
11. लाजिम है कि हम भी देखेंगे... 15
12. महात्मा गांधी की शरण खोजता... 16
13. जेएनयू में शिक्षकों एवं छात्रों पर... 17
14. गतिविधियां एवं समाचार... 18
15. हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन... 19
16. कविताएं... 20

संपादकीय

गांधी बहुआयामों में प्रकट हो रहे हैं

गांधी विचारधारा के दायरे से ऊपर उठकर प्रकट हो रहे हैं। पूरी दुनिया में नागरिकों के प्रतिरोध को प्रकट करने का माध्यम बन रहे हैं। विचारधाराओं से बंधे संगठन हिंसा और शांति की बहस में फंसे हैं। जहां संगठन जितना अधिक केन्द्रीकृत व सैन्यीकृत है, वहां उसमें हिंसा के प्रति रुझान उतना अधिक है। किन्तु जहां केवल नागरिक है, वहां उसके प्रतिरोध की अभिव्यक्ति में गांधी प्रकट हो रहे हैं। ये केन्द्रीकृत-सैन्यीकृत संगठन जैसे-जैसे आम नागरिकों से अलग-थलग हो रहे हैं, वैसे-वैसे उनकी रणनीति प्रकट हो रही है कि आम नागरिकों के आंदोलन में घुसकर हिंसा-आगजनी और तोड़-फोड़ करें। चूंकि पुलिस को ऐसे उपद्रवी तत्त्वों की उपस्थिति से आंदोलन का दमन करने का बहाना मिल जाता है, इसलिए पुलिस ऐसे तत्त्वों के खिलाफ पहले से कोई कार्यवाई नहीं करती। कहीं-कहीं तो यह समझना मुश्किल हो जाता है कि हिंसा-आगजनी आदि में किसका हाथ अधिक है। ऐसी स्थिति में जब प्रतिरोध की अभिव्यक्ति में गांधी प्रकट हो रहे हैं, तो प्रतिरोध करने वालों को यह सावधानी भी रखनी होगी कि हिंसा को मानने वाले तत्त्व न तो उस प्रतिरोध में शामिल हों, न उसका फायदा उठा सकें।

दूसरी बात, जैसे-जैसे जनता के प्रतिरोध में गांधी प्रकट हो रहे हैं, वैसे-वैसे सांप्रदायिक शक्तियों के माध्यम से गोडसे और जिन्ना भी प्रकट हो रहे हैं। वे हर आंदोलन को, हर मुद्दे को सांप्रदायिक रंग देने का प्रयास कर रहे हैं। विद्रोह की नज़्मों और कविताओं को भी सांप्रदायिक रंग दिया जा रहा है। सरकारी तंत्र ही नहीं, कला और संस्कृति से जुड़े लोग, मीडिया और शिक्षण से जुड़े लोग भी इंसानियत और संविधान के दृष्टिकोण से देखने के बजाय, सांप्रदायिक दृष्टिकोण से अपना पक्ष रख रहे हैं।

यह स्पष्ट होता जा रहा है कि आज दुनिया में गांधी स्वतःस्फूर्त नागरिक शक्ति के प्रकट होने का माध्यम होते जा रहे हैं तथा केन्द्रीकृत व संगठित शक्तियां चाहे गांधी का कितना भी नाम क्यों न लें, वे अंततः गांधी विरोधी हो जाती हैं। गांधी विरोधी यानि सत्य एवं अहिंसा विरोधी। ऐसे में गांधी के एक कथन को सदैव याद रखना चाहिए कि संगठन अहिंसक है या नहीं, इसका निरंतर परीक्षण होते रहना चाहिए। अहिंसक क्रांति का यह महत्त्वपूर्ण सूत्र है। क्योंकि अहिंसक क्रांति का अर्थ है—लोक की अहिंसक सत्ता का निर्माण। लोक की अहिंसक सत्ता का निर्माण तभी होगा, जब लोक आंदोलन से कोई श्रेणीबद्ध संगठन (या पार्टी) मजबूत होकर न उभरे, बल्कि उससे लोक की अहिंसक सत्ता का दायरा फैलता जाये। स्वतःस्फूर्त नागरिक आंदोलनों ने, एक तरह से श्रेणीबद्ध संगठनों के झंडे तले आंदोलन चले, इस विचार को नकार दिया है।

यहां से सर्वधर्म समभाव का एक दूसरा अर्थ भी निकलता है। पहला अर्थ तो यह था कि सत्य एवं ईश्वर अनंत हैं, अतः उनसे जुड़ने के भी अनंत मार्ग हो सकते हैं। सच्चे मन से आप जिस मार्ग से चल रहे हैं, वह भी सही है, किन्तु सच्चे मन से कोई और किसी अन्य मार्ग से चल रहा है तो वह भी सही है। यानि यदि धर्म सत्य एवं ईश्वर से जुड़ने के रास्ते हैं, तो सभी रास्तों के प्रति समान सम्मान होना चाहिए। यदि धर्म के नाम पर राजसत्ता कब्जा करने की रणनीति है, तो वह अस्वीकार्य होनी चाहिए—क्योंकि वह हिंसामूलक शक्ति अर्जित करना चाहती है तथा लोक की अहिंसक सत्ता के निर्माण के विरोध में अपनी हिंसक शक्ति का उपयोग करती है। उसमें सत्य को और अहिंसा को आत्मसात् करने की गुणवत्ता ही नहीं होती। गांधी ने राजसत्ता से अलग लोकसत्ता निर्माण के कार्य को अपना लक्ष्य इसीलिए बनाया, क्योंकि लोकसत्ता ही सत्य एवं अहिंसा को आत्मसात् कर सकेगी। लोकसत्ता ही सत्य एवं अहिंसा के अधिष्ठान पर निर्मित हो सकेगी। और अंततः लोकसत्ता ही सर्वधर्म समभाव को मूर्त रूप देने का माध्यम बन सकेगी। इसीलिए सर्वधर्म समभाव का एक दूसरा पक्ष है केन्द्रीकृत-सैन्यीकृत-श्रेणीबद्ध व्यवस्थाओं का निषेध। क्योंकि ऐसी व्यवस्थाएं स्वयं में समभाव (हर तरह के समभाव) के निषेध में खड़ी हैं।

अतः आज धर्म को सभी प्रकार की केन्द्रीकृत-सैन्यीकृत-श्रेणीबद्ध व्यवस्थाओं के साहचर्य से बाहर निकालना, उनके अंकुश और नियंत्रण से मुक्त कराना युग धर्म है। गांधी जिस विश्व चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं, उसे खंड-खंड करने का प्रयास हर स्तर पर जारी है। नैतिक-अहिंसक और सत्य के मूल्य के अधिष्ठान पर वैश्विक मानवीय चेतना के निर्माण के मार्ग में आने वाली हर बाधा से निरंतर संघर्ष ही गांधी को सच्ची श्रद्धांजलि होगी। **–बिमल कुमार**

30 जनवरी 1948

प्रतिपल...प्रतिक्षण...

❑ रेहान फ़ज़ल

हमेशा की तरह महात्मा गांधी सुबह तड़के साढ़े तीन बजे उठे. प्रार्थना की, दो घंटे अपनी डेस्क पर कांग्रेस की नई जिम्मेदारियों के मसौदे पर काम किया और इससे पहले कि दूसरे लोग उठ पाते, छह बजे फिर सोने चले गए. काम करने के दौरान वह आभा और मनु का तैयार किया हुआ नीबू और शहद का गरम पेय और मोसम्मी जूस पीते रहे.

वे दोबारा सो कर आठ बजे उठे.

दिन के अख़बारों पर नज़र दौड़ाई और फिर ब्रजकृष्ण ने तेल से उनकी मालिश की. नहाने के बाद उन्होंने बकरी का दूध, उबली सब्जियाँ, टमाटर, मूली खाई और संतरे का रस पिया. शहर के दूसरे कोने में पुरानी दिल्ली रेलवे स्टेशन पर नाथूराम गोडसे, नारायण आप्टे और विष्णु करकरे अभी भी गहरी नींद में थे. डरबन के उनके पुराने साथी रुस्तम सोराबजी सपरिवार गांधीजी से मिलने आए. इसके बाद रोज की तरह वे दिल्ली के मुस्लिम नेताओं से मिले. उनसे बोले कि मैं आप लोगों की सहमति के बगैर वर्धा नहीं जा सकता.

सुधीर घोष और गांधी जी के सचिव प्यारेलाल ने नेहरू और पटेल के बीच मतभेदों पर लंदन टाइम्स में छपी एक टिप्पणी पर उनकी राय माँगी. इस पर गांधी ने कहा कि वह यह मामला पटेल के सामने उठाएंगे, जो चार बजे उनसे मिलने आ रहे हैं और फिर वह नेहरू से भी बात करेंगे, जिनसे शाम सात बजे उनकी मुलाकात तय थी. चार बजे वल्लभभाई पटेल अपनी पुत्री मणिबेन के साथ गांधीजी से मिलने पहुँचे और प्रार्थना के समय यानी शाम पाँच बजे के बाद तक उनसे मंत्रणा करते रहे. पटेल के साथ बातचीत के दौरान गांधीजी चर्खा चलाते रहे और आभा का परोसा शाम का खाना— बकरी का दूध, कच्ची गाजर, उबली सब्जियाँ और तीन संतरे खाते रहे.

दस मिनट की देरी

आभा को मालूम था कि गांधी को प्रार्थना सभा में देरी से पहुँचना बिल्कुल पसंद नहीं है. वह परेशान हुईं, पटेल हालांकि भारत के लौह पुरुष थे, लेकिन उनकी हिम्मत नहीं हुई कि वह गांधी को याद दिला सकें कि उन्हें देर हो रही है. बहरहाल उन्होंने गांधीजी की जेब घड़ी उठाई और धीरे से हिला कर उनको याद दिलाने की कोशिश की कि उन्हें देर हो रही है. अंततः मणिबेन ने हस्तक्षेप किया और गांधीजी जब

प्रार्थना सभा में जाने के लिए उठे तो पाँच बज कर दस मिनट होने को आए थे. गांधीजी ने तुरंत अपनी चप्पल पहनी और अपना बाँया हाथ मनु और दायाँ हाथ आभा के कंधे पर डाल कर सभा की ओर बढ़ निकले. रास्ते में उन्होंने आभा से मज़ाक किया. गाजरों का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा, 'आज तुमने मुझे मवेशियों का खाना दिया.'

आभा ने जवाब दिया,'लेकिन बा इसको घोड़े का खाना कहा करती थीं.' गांधी बोले, 'मेरी दरियादिली देखिए कि मैं उसका आनंद उठा रहा हूँ, जिसकी कोई परवाह नहीं करता.'

तीन गोलियां और राम...राम

आभा हँसी लेकिन उलाहना देने से भी नहीं चूकीं, 'आज आपकी घड़ी सोच रही होगी कि उसको नज़रअंदाज़ किया जा रहा है.'

गांधी बोले, 'मैं अपनी घड़ी की तरफ क्यों देखूँ.' फिर अचानक वे गंभीर हो गए और बोले, 'तुम्हारी वजह से मुझे दस मिनटों की देरी हो गई है. नर्स का यह कर्तव्य होता है कि वह अपना काम करे चाहे वहाँ ईश्वर भी क्यों न मौजूद हो. प्रार्थना सभा में एक मिनट की देरी से भी मुझे चिढ़ है.'

यह बात करते-करते वे प्रार्थना स्थल तक पहुँच चुके थे. दोनो बालिकाओं के कंधों से हाथ हटा कर गांधी ने लोगों के अभिवादन के जवाब में उन्हें जोड़ लिया. बाँईं तरफ से नाथूराम गोडसे उनकी तरफ झुका और मनु को लगा कि वह गांधी के पैर छूने की कोशिश कर रहा है.

आभा ने चिढ़ कर कहा कि उन्हें पहले ही देर हो चुकी है. उनके रास्ते में व्यवधान न उत्पन्न किया जाए. लेकिन गोडसे ने मनु को धक्का दिया, जिससे उनके हाथ से माला और पुस्तक नीचे गिर गई. वह उन्हें उठाने के लिए नीचे झुकीं, तभी गोडसे ने पिस्टल निकाल ली और एक के बाद एक, तीन गोलियाँ गांधीजी के सीने और पेट में उतार दीं.

उनके मुँह से निकला, 'राम.....रा.....म.' और उनका जीवनविहीन शरीर नीचे की तरफ गिरने लगा.

सन्नाटे में स्तब्ध भीड़

आभा ने गिरते हुए गांधी के सिर को अपने हाथों का सहारा दिया. गोपाल गोडसे ने अपनी किताब 'गांधीज़ असैसिनेशन एंड मी' में लिखा है कि बाद में नाथूराम गोडसे ने बताया कि दो लड़कियों को गांधी के सामने पा कर वह थोड़ा परेशान हुआ था.

गोडसे ने बताया था, 'फ़ायर करने के बाद मैंने कस कर पिस्टल को पकड़े हुए अपने हाथ को ऊपर उठाए रखा और पुलिस.... पुलिस चिल्लाने लगा. मैं चाहता था कि कोई यह देखे कि यह योजना बना कर और जान बूझ कर किया गया काम था. मैंने आवेश में आकर ऐसा नहीं किया था. मैं यह भी नहीं

चाहता था कि कोई कहे कि मैंने घटना स्थल से भागने या पिस्टल फेंकने की कोशिश की थी. लेकिन यकायक सब चीजे जैसे रुक-सी गईं, और कम से कम एक मिनट तक कोई इंसान मेरे पास तक नहीं फटका.'

गांधी की हत्या के कुछ मिनटों के भीतर ही लॉर्ड माउंटबेटन वहाँ पहुँच गए. तनाव इतना था कि एक भी ग़ैर-ज़रूरी शब्द निकला नहीं कि अफ़वाह जंगल में आग की तरह फैल जाती. माउंटबेटन को देखते ही एक व्यक्ति चिल्लाया, 'गांधी को एक मुसलमान ने मारा है.' उस समय तक माउंटबेटन को हत्यारे का नाम और धर्म के बारे में पता नहीं चल पाया था. लेकिन इसके बावजूद उन्होंने तमक कर जवाब दिया, 'यू फ़ूल, डोन्ट यू नो इट वाज़ ए हिंदू.'

जीवन की रोशनी

माउंटबेटन के साथ चल रहे उनके प्रेस सहायक कैंपबेल जॉनसन ने उनसे पूछा, 'आपको कैसे मालूम कि ये काम हिंदू ने किया है.' माउंटबेटन का उत्तर था, 'मुझे वास्तव में नहीं मालूम'. राजमोहन गांधी अपनी किताब मोहन दास में लिखते हैं कि बिरला हाउस के उस कमरे में जहाँ गांधी का शव रखा हुआ था, नेहरू ज़मीन पर बैठे हुए थे. उनकी आँखों से ज़ारोंकतार आँसू निकल रहे थे. उनसे कुछ फीट की दूरी पर सरदार पटेल भी बैठे हुए थे, बिल्कुल पत्थर के बुद्ध की मुद्रा में.

उनकी आँखे उस शख़्स पर गड़ी हुई थीं, जिससे एक घंटे पहले वे बातें कर रहे थे. अचानक नेहरू उठे. उनके साथ सरदार पटेल भी उठे. दोनों ने एक दूसरे को अपनी बाहों में भर लिया. उसी शाम नेहरू ने रेडियो पर देश को संबोधित किया, 'द लाइट हैज़ गॉन आउट ऑफ़ अवर लाइव्स..'

अगले दिन 31 जनवरी को महात्मा गांधी को अंतिम विदाई देने के लिए लाखों लोगों का सैलाब राजघाट पर उमड़ पड़ा था. गांधी की चिता को आग दी जा रही थी कि तभी मनु ने अपने चेहरे को सरदार पटेल की गोद में रख कर फूट-फूट कर रोना शुरू कर दिया. कुछ क्षणों बाद जब उन्होंने अपनी निगाहें ऊपर उठाई तो उन्हें महसूस हुआ कि जैसे पटेल अचानक दस साल और बूढ़े दिखने लगे हैं। ❑

एक रहबर चला गया

गांधी की मौत के बाद प्रधानमंत्री का देश के नाम संदेश

❑ **जवाहरलाल नेहरू**

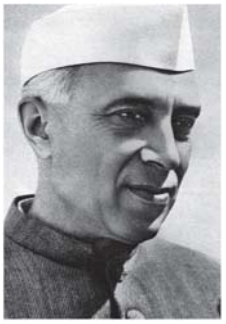

ज़िन्दगी का सितारा सदा के लिए जा चुका है। अंधकार, नितांत अंधकार हो गया है। समझ नहीं पा रहा कि आपसे यह किस तरह कहूं कि हम सबके प्रिय बापू, देश के राष्ट्रपिता नहीं रहे। शायद ऐसा कहना गलत होगा, फिर भी अब हम बापू को उस तरह कभी नहीं देख सकेंगे, जिस तरह ज़माने से देखा कर रहे थे। मेरे लिए ही नहीं, संपूर्ण देश के लिए एक गहरा घाव होगा यह। एक रहबर चला गया है। अब उनके पास जाकर मशविरा नहीं लिया जा सकता, नहीं मिलेगी वह महान छाया। इस गहरे अघात पर मेरी या किसी की भी बातें फिलहाल मरहम नहीं लगा पाएंगी।

राष्ट्र के क्षितिज पर चमकने वाला यह सितारा गैरमामूली था। बरसों से चमकने वाला यह ध्रुवतारा क्षितिज पर आगे भी चमकता रहेगा। हमारी धरती के आसमान पर सदा छाया रहेगा। दुनिया भी देखेगी और हज़ारों दिलों को जीने की आस मिलेगी। जिंदगी के परमसत्य व उत्तम मार्ग का मर्म बताने वाली, त्रुटियों से मुक्त करने वाली रोशनी सदा सार्थक बनी रहेगी। नहीं भूलें कि मुल्क को आज़ादी की उदय बेला का उपहार किसने दिया?

इस महान आत्मा के पास बहुत से अन्य महत्वपूर्ण काम रहे लेकिन देश की आज़ादी सबसे जरूरी थी। हमें यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि रोशनी की जरूरत नहीं थी। यह भी नहीं कि रोशनी समय के बंधनों में थी। अब जबकि हमें अनेक बाधाओं पर विजय प्राप्त करनी होगी, उस महान रहनुमा का नहीं होना अपूरणीय क्षति है।

एक सरफिरे ने बापू की जीवनलीला को समाप्त कर दिया है। उस आदमी को सरफिरा ही कहूंगा, जिसने इस हिंसक काम को अंजाम दिया। इधर हाल में मुल्क में द्वेष की लहर पनप रही है। नफरत की लपटें हमें जाने अनजाने घेर रही हैं। इस ज़हर को हमें मिलकर मिटाना होगा। जड़ों से काटना होगा। हमें तमाम विपदाओं का सामना सरफिरा होकर अथवा अधूरा रहकर नहीं करना है।

हमें बापू की शिक्षा के साथ मुसीबतों का मुकाबला करना होगा। स्मृति रहे कि द्वेष में किसी को भी कदम नहीं उठाना है। हमें शक्तिवान एवं संकल्प के धनी लोगों का आचरण अपनाना होगा। विपदाओं का संकल्प से मुकाबला करना होगा। बापू की महान सीख को लेकर आगे बढ़ने का संकल्प रखने वाला बनना होगा। स्मृति रहनी चाहिए कि बापू की आत्मा क्या आकांक्षा रखती थी। यह आस्था का विषय होगा कि बापू की आत्मा सब देख रही है। आत्मा को बड़ी तकलीफ पहुंचेगी कि लोग सत्य व अहिंसा का मान नहीं रख रहे हैं। हिंसा व हीन व्यवहार को अपना कर हम अपना अभियान बड़ा नहीं करें!

अहिंसा कमज़ोरी की निशानी नहीं है। एकजुट होकर विपदाओं का सामना करना संकल्प होना चाहिए। संगठित एकता काम आएगी। बापू का महान व्यक्तित्व काम आएगा। बापू के यूं चले जाने से हुई क्षति को केवल वही संभाल सकते थे। असीम नुकसान की घड़ी में लोगों को तमाम मतभेद भुला देना चाहिए। मुसीबत की बेला में व्यक्तिगत चीज़ों को भूल कर देश के ध्येय लक्ष्य पर ध्यान आकर्षित करना होगा। इस आघात ने हमें महान लक्ष्यों को एक बार फिर याद दिलाया है। सत्य व अहिंसा के अजेय सत्य की प्रासंगिकता आज पहले से कहीं अधिक है। यदि हम जीवन के इस मर्म को स्मरण रखें तो भारत भी इसे नहीं भुलाएगा। ❑

मानवता के प्राण गांधी

❑ पर्लबक

अमेरिका में पेंसिलवेनिया के निकट देहाती क्षेत्रों में एक गांव है पेरेक्सीर। वहीं हमारी झोपड़ी है। 31 जनवरी 1948 का वह दिन पिछले दिनों की तरह ही आरम्भ हुआ। हम सवेरे ही उठने के अभ्यासी हैं, क्योंकि बच्चों को स्कूल जाना पड़ता है। नित्य की तरह ही आज हम जलपान के लिए मेज के चारों ओर इकट्ठे हुए और साधारण बातचीत करने लगे। खिड़कियों से बाहर घने हिमपात का दृश्य दिखलाई पड़ रहा था। हमारे बच्चों को शंका हो रही थी कि कहीं और अधिक हिम-पात न हो। एकाएक गृहपति कमरे में आये। उनकी मुखमुद्रा गम्भीर थी। उन्होंने कहा, 'रेडियो पर अभी एक अत्यन्त भयानक समाचार आया है।' यह सुनकर हम सब उनकी ओर देखने लगे और तुरन्त ये हृदय-विदारक शब्द सुनाई पड़े, 'गांधीजी का देहावसान हो गया।'

मेरी इच्छा है कि भारत से हजारों मील दूर स्थित अमेरिका-निवासियों पर गांधीजी की मृत्यु की जो प्रतिक्रिया हुई, उसे भारतवासी जानें। हम लोगों ने हृदय को दहला देने वाला यह संवाद सुना। यह साधारण मृत्यु नहीं थी। गांधीजी शांति की प्रतिमूर्ति थे और उन्होंने अपना सारा जीवन अपने देश की जनता की सेवा के लिए लगा दिया था। ऐसे शांतिप्रिय व्यक्ति की हत्या कर दी गई। मेरे दस वर्ष के छोटे बच्चे की आंखों में आंसू छलकने लगे और उसने कहा, 'मैं चाहता हूं कि यदि बन्दूक बनाने का आविष्कार ही न हुआ होता तो बड़ा अच्छा था।' हम लोगों में से किसी ने भी गांधीजी को नहीं देखा था, क्योंकि जब हम लोग भारतवर्ष में थे, तब गांधीजी जेल में ही थे। फिर भी हम सभी उन्हें जानते थे। हमारे बच्चे गांधीजी की आकृति से इतने परिचित थे, मानों गांधीजी स्वयं हमारे घर में ही रहते थे। हमारे लिए गांधीजी संसार के इने-गिने महात्माओं में से एक थे। पृथ्वी के उन गिने-चुने पीरों में से वे एक थे, जो अपने विश्वास पर हिमालय की तरह अटल और दृढ़ रहते थे। उनके संबंध में हमारी धारणा भी वैसी ही अटल है।

हमें भारतवर्ष पर गर्व है कि महात्मा गांधी जैसे महान व्यक्ति भारत के अधिवासी थे । पर साथ ही हमें खेद भी है कि भारत के ही एक अधिवासी ने उनकी हत्या की। इस प्रकार दुःखी और सन्तप्त हम लोग चुपचाप अपने दैनिक कार्यों में लग गये। भारतवासी यह जानकर आश्चर्य करेंगे कि हमारे देश में गांधीजी का यश कितने व्यापक रूप में फैला। मैं उनकी मृत्यु के एक घन्टे बाद सड़क से होकर कहीं जा रहा था कि एकाएक एक किसान ने मुझे रोका और पूछा, 'संसार का प्रत्येक व्यक्ति सोचता था कि गांधीजी एक उत्तम व्यक्ति थे तो फिर लोगों ने उन्हें मार क्यों डाला? मैंने अपना सिर धुना और कुछ बोल न सका। उसने संकेत से कहा, 'जिस तरह लोगों ने महात्मा ईसा को मारा था उसी तरह लोगों ने महात्मा गांधी को मार डाला।'

उस किसान ने ठीक ही कहा था कि महात्मा ईसा की सूली के अतिरिक्त संसार की किसी भी घटना की महात्मा गांधी की गौरवपूर्ण मृत्यु से तुलना नहीं हो सकती। गांधीजी की मृत्यु उन्हीं के देशवासी द्वारा हुई। यह ईसा के सूली पर चढ़ाये जाने के बाद दूसरी वैसी ही घटना है। संसार के वे लोग, जिन्होंने गांधीजी को कभी नहीं देखा था, आज उनकी मृत्यु से शोक-संतप्त हो रहे हैं। वे ऐसे समय में मरे जब उनका प्रभाव दुनिया के कोने-कोने में व्याप्त हो चुका था।

कुछ दिनों से अमेरिका-निवासियों में महात्मा गांधी के प्रति बढ़ती हई श्रद्धा का अनुभव हम कर रहे थे। महात्मा गांधी के प्रति लोगों में अगाध श्रद्धा थी। महात्मा गांधी के प्रति जनता में वास्तविक आदर था और हम लोगों को यह प्रतीत होने लगा था कि वे जो कुछ कर रहे थे, वही ठीक था।'

—लेखक अमेरिका के नोबल विजेता साहित्यकार थे
गांधी श्रद्धांजलि ग्रंथ (एस.राधाकृष्णन)

गांधी की हत्या के सात प्रयास

गांधीजी की हत्या के कुल सात प्रयास हुए। इनमें से तीन प्रयासों में नाथूराम गोडसे शामिल था और उन सभी प्रयासों के लिए पुणे के कुछ कट्टर रूढ़िवादी जिम्मेवार थे। हत्या के सात में से चार प्रयासों के समय देश के विभाजन एवं 55 करोड़ रूपयों की बात स्वप्न में भी नहीं थी, फिर उस समय हत्या के प्रयत्नों के क्या कारण थे?

हत्या के प्रयत्नों का क्रमवार विवरण इस प्रकार है :

1. 1934 में पुणे नगरपालिका द्वारा गांधीजी को सम्मानित करने के लिए आयोजित समारोह में जाते समय बम फेंका गया। भूल से बम अगली गाड़ी पर लगा पर गांधीजी पिछली गाड़ी में थे। इस घटना में नगरपालिका के मुख्य अधिकारी तथा दो पुलिसकर्मी सहित कुल सात लोग गंभीर रूप से घायल हुए।

2. जुलाई 1944 में गांधीजी जब पंचगनी में थे, तब एक दिन छुरा लेकर एक व्यक्ति गांधीजी के सामने आ गया। यह आदमी नाथूराम गोडसे था, ऐसी गवाही पुणे के सुरती लॉज के मालिक मणिशंकर पुरोहित ने दी थी। महाबलेश्वर के कांग्रेस के भू. पू. सांसद एवं सतारा जिला मध्यवर्ती बैंक के तत्कालीन अध्यक्ष भि. दा. भिसारे गुरूजी ने नाथूराम के हाथ से छुरा छीन लिया था। गांधीजी ने उसके बाद तुरंत ही नाथूराम गोडसे को मिलने के लिए बुलाया। परंतु वह नहीं आया।

3. तीसरा प्रयास सितंबर 1944 में हुआ। गांधीजी मुहम्मद अली जिन्ना से वार्ता के लिए बंबई जाने वाले थे। उस अवसर का गलत फायदा उठाने के लिए पुणे का एक ग्रुप वर्धा गया था। इनमें एक व्यक्ति ग. ल. थत्ते के पास से पुलिस को छुरा मिला। थत्ते का कहना था कि यह छुरा उसने उस गाड़ी के टायर को फोड़ने के लिए रखा था, जिसमें गांधीजी जाने वाले थे। परंतु गांधीजी के निजी सचिव प्यारेलाल लिखते हैं कि उस दिन सबेरे उनके पास पुलिस अधिकारी का फोन आया कि प्रदर्शनकारी अमंगल घटना की तैयारी करके आये थे। गांधीजी का आग्रह था कि वे अकेले प्रदर्शनकारियों के साथ जायेंगे एवं जब तक प्रदर्शनकारी उन्हें गाड़ी में बैठने की अनुमति नहीं देंगे तब तक उनके साथ ही चलते रहेंगे। परंतु गांधीजी के निकलने का समय होने से पहले ही पुलिस ने प्रदर्शनकारियों को पकड़ लिया।

4. 29 जून 1946 को चौथा प्रयत्न किया गया। गांधीजी एक विशेष रेलगाड़ी द्वारा बंबई से पुणे जा रहे थे। रेलवे लाइन पर बड़े-बड़े पत्थर रखकर गाड़ी को गिराने का षड्यंत्र किया गया। रात का समय होने के बावजूद ड्राइवर की सावधानी के कारण दुर्घटना नहीं हुई पर इंजन को क्षति पहुंची थी। इस घटना के बाद प्रार्थना-सभा में इसका उल्लेख करते हुए गांधीजी ने कहा, 'मैं छः बार इस प्रकार के प्रयासों से बच गया हूं। मैं इस प्रकार मरने वाला भी नहीं हूं, मैं तो 125 वर्ष जीने वाला हूं।' इस बात का उल्लेख नाथूराम गोडसे ने अपने मराठी सामयिक 'अग्रणी' में करते हुए लिखा—'परंतु जीने कौन देगा?'

5 एवं 6. मदनलाल पहवा ने 20 जनवरी को बम फेंक कर हत्या का असफल प्रयास किया। 30 जनवरी को नाथूराम गोडसे ने गांधीजी की हत्या की। उल्लेखनीय है कि 12 जनवरी, 1948 के बाद हुई इन घटनाओं के प्रसंग में विभाजन एवं 55 करोड़ का मुद्दा उपस्थित हुआ था, इससे पहले यह कभी नहीं था।

हत्यारों को नायक बनाने की कवायद

❑ उर्मिलेश

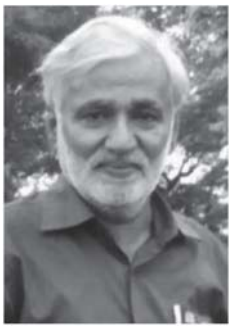

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भारतीय जनता पार्टी को जब भी सत्ता में आने का मौक़ा मिलता है, उनके नेता 'इतिहास के पुनर्लेखन' को काफ़ी महत्व देते हैं। इतिहास के पुनर्लेखन के उनके आह्वान के दो महत्वपूर्ण पहलू होते हैं। एक तो ये कि जहाँ उन्हें असहज लगता है, वे गली-मोहल्ले-गाँव-नगर से लेकर रेलवे स्टेशनों और स्कूलों-विश्वविद्यालयों के नाम अपनी पसंद के रखना शुरू कर देते हैं। दूसरा यह कि इतिहास की तथ्य-आधारित पुस्तकों की जगह, वे अपने मन-आधारित इतिहास लेखन के लिए अभियान चलाते हैं। दिक्क़त यह है कि उनके पास लिखने-पढ़ने वाले लोगों की भारी किल्लत है।

स्तरहीन बौद्धिकों का संकट

संघ-बीजेपी के नेता अपनी इस कमज़ोरी को अच्छी तरह पहचानते हैं। इसलिए सत्ता में प्रचंड बहुमत के साथ दोबारा आने के बाद इस बार उनका ज़ोर प्रतिष्ठित शासकीय संस्थानों, विश्वविद्यालयों और अन्य शोध संस्थानों में पहले से काम कर रहे बौद्धिकों का इस्तेमाल करने पर रहता है। अभी कुछ दिनों पहले काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित इतिहास विषयक एक सेमीनार में स्वयं देश के गृहमंत्री ने इतिहास के पुनर्लेखन का आह्वान किया। मैं इतिहास का विद्यार्थी हूँ, इसलिए इतना तो दावे के साथ कह सकता हूं कि इतिहास चुनावी या सियासी रैलियों में भाँजी जाने वाली कोरी लफ्फ़ाजी नहीं है, जिसमें कोई प्रभावशाली नेता तक्षशिला को बिहार में घुसा दे या देश में मतदाताओं की संख्या 600 करोड़ बता दे, फिर भी कोई चूँ नहीं करता!

संघ की भूमिका पर क्या लिखवाएँगे?

बहुत पुरानी बात करने से पहले निकट के इतिहास पर पहले बात करें! भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास का पुनर्लेखन कैसे कराना चाहेंगे?

यह बात सही है कि आरएसएस के कुछ नेता कुछ समय के लिए कांग्रेस में रहकर स्थानीय स्तर पर आज़ादी की लड़ाई का हिस्सा बने, पर वे जल्दी ही अलग हो गए थे। बाद में तो संदेश और निर्देश दिए जाने लगे कि कोई भी स्वयंसेवक कांग्रेस के नेतृत्व में चलाए जा रहे शासन-विरोधी अभियान में शामिल न हो। इतिहास की इस इबारत को कैसे धोएँगे, कैसे मिटायेंगे?

तथ्यों को कैसे छुपाएँगे?

यह बात सही है कि विनायक दामोदर सावरकर वर्ष 1911 तक आज़ादी की लड़ाई के सक्रिय सिपाही थे। इसी के चलते उन्हें सज़ा हुई थी। वह 'काला पानी' भेजे गए, अंडमान की सेल्यूलर जेल में। पर कुछ ही समय बाद उन्होंने ब्रितानी हुकूमत से माफ़ी माँगने का सिलसिला शुरू कर दिया और इस तरह अपने शानदार अतीत पर अपने ही हाथों कालिख पोत डाली। हुकूमत से उन्हें माफ़ी मिली। ख़र्च चलाने के लिए एक निश्चित राशि भी तय कर दी गई। फिर रत्नागिरी में रहते हुए हिन्दू महासभा के लिए उन्होंने क्या क्या काम किये?

ब्लैक बोर्ड पर लिखी इबारत नहीं है इतिहास!

कोई 'अति राष्ट्रवादी इतिहासकार' भी भला इन ठोस तथ्यों पर कैसे पर्दा डाल सकेगा? अगर वह पर्दा डालने की कोशिश भी करे तो क्या ये तथ्य इतिहास से गायब हो जायेंगे? माफ़ करें, इतिहास किसी ब्लैक-बोर्ड पर लिखी इबारत नहीं कि आप जब चाहें तब उसे मिटा सकते हैं। वह इतने 'वीर' थे कि गाँधी, नेहरू, सुभाष, चंद्रशेखर आज़ाद या असंख्य स्वाधीनता सेनानियों की तरह उन्होंने ब्रितानी हुकूमत को लगातार टक्कर दी और कभी माफ़ी नहीं माँगी? सावरकर इतने महान विद्वान और विचारक थे कि विदेशी शासन और 'देसी इलीट' से जूझते हुए दलित, आदिवासी और उत्पीड़ित समाज के करोड़ों लोगों के लिए डॉ आंबेडकर की तरह सामाजिक न्याय का मार्ग प्रशस्त किया? क्या-क्या लिखेंगे और कैसे लिखवायेंगे? और आपके ऐसे इतिहास-लेखन को पढ़ेगा कौन?

गोडसे के बारे में क्या लिखवाएँगे?

क्या यह भी लिखवायेंगे कि भारतीय स्वाधीनता संग्राम वीर सावरकर की अगुवाई में शुरू हुआ और आरएसएस-हिन्दू महासभा के नेतृत्व में 15 अगस्त, 1947 को आज़ादी हासिल हुई? नाथूराम के भाई और महात्मा गाँधी की हत्या में सहभागी होने के चलते 18 साल की सज़ा पाये गोपाल गोडसे की इस स्वीकारोक्ति को कैसे मिटायेंगे कि दोनों गोडसे बंधु हिन्दू महासभा से पहले आरएसएस के लिए पुणे और सांगली में सक्रिय थे।

पटेल ने क्या कहा था सावरकर के बारे में?

जिन सावरकर साहब के लिए 'भारतरत्न' के चर्चे हैं, उनके बारे में उस महान लौहपुरुष सरदार पटेल ने क्या कहा था? उनके संकलित लेखन में सावरकर पर यह टिप्पणी प्रमुखता से दर्ज है। देश के गृहमंत्री के तौर पर उन्होंने महात्मा गाँधी की नृशंस हत्या के बारे में प्रधानमंत्री नेहरू को लिखे पत्र में यह पंक्तियाँ दर्ज की थी—सावरकर की अगुआई में हिन्दू महासभा की यह कट्टरपंथी शाखा है, जिसने हत्या की साजिश रची और अंततः उसे अंजाम तक पहुँचाया। यह भी नहीं भुलाया जा सकता कि गाँधी जी की हत्या के सह-अभियुक्त रहे विनायक दामोदर सावरकर कोर्ट की कार्रवाई के दौरान साक्ष्य पेश करने से जुड़ी कुछ तकनीकी चूकों के चलते ही सज़ा पाने से बच पाये थे।

यक़ीनन, आज सत्ता आपके साथ है, पर इतिहास नहीं! इतिहास ज़रूर लिखिए और लिखवाइए। पर लिखने-लिखवाने से पहले इतिहास को पढ़ा जाना चाहिए, सिर्फ भारत का ही नहीं, पूरी दुनिया का। जर्मनी, इटली समेत पूरे यूरोप और अमेरिका का भी। पढ़े बग़ैर तो सत्ता-निर्देशित भारतीय टीवी चैनलों की तरह बहस के नाम पर तथ्य और सत्य का सिर्फ सतहीकरण ही होगा! ❑

मजबूरी का नहीं, मज़बूती का नाम महात्मा गांधी

❑ प्रो. पुरुषोत्तम अग्रवाल

गांधीजी ने अपनी आत्मकथा के आमुख में एक बहुत ही मार्मिक घटना का उल्लेख किया है. गांधीजी लिखते हैं कि 'एक निर्मल भाई ने मुझसे पूछा कि आत्मकथा लिखने की कोई परंपरा भारत में नहीं है. आत्मकथा एक ठेठ पाश्चात्य विधि है. आप क्यों आत्मकथा लिखने बैठ गए?' गांधीजी लिखते हैं कि 'मुझे उनकी बात में दम नज़र आया, लेकिन फिर भी मैं ये आत्मकथा लिख रहा हूं. क्योंकि असल में यह कोई 'आत्म की कथा' नहीं है. यह तो मेरे प्रयोगों की कथा है और मुझे लगता है कि मेरे प्रयोगों से दूसरों को भी कुछ लाभ हो सकता है. इसलिए मैं इसको लिख रहा हूं.' गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में अपने राजनीतिक और आध्यात्मिक प्रयोगों के बीच अंतर रखा। उन्होंने कहा कि मेरा जीवन इतना सार्वजनिक है कि मेरी राजनीति सब लोग जानते हैं. गांधीजी ने लिखा 'अपने आध्यात्मिक प्रयोगों को समझने और लोगों तक उन्हें पहुंचाने के लिए, जिन्हें मैं ही जान सकता हूं और जिनसे मेरे राजनीतिक जीवन की शक्ति पैदा हुई है, मुझे उन प्रयोगों का वर्णन करना पड़ेगा। ज्यों-ज्यों मैं विचार करता हूं, अपने अतीत पर दृष्टि डालता हूं, त्यों- त्यों अपनी अल्पता मुझे साफ़ दिखाई देती है.' मुझे लगा कि गांधीजी के ऐसे वाक्य मेरे जैसे छोटे व्यक्ति के लिए भी दीपक का काम करते हैं. मैं भी कहना चाहता हूं कि ज्यों-ज्यों मैं अपने अतीत पर दृष्टि डालता हूं, मुझे अपनी अल्पता साफ़ दिखाई देती है.

मजबूरी का नाम महात्मा गांधी, बहुत लंबे अरसे तक मैं भी ऐसा कहा करता था, लेकिन धीरे-धीरे मैंने महसूस किया और गौर से सोचें तो हम सब महसूस कर सकते हैं कि असल में मजबूरी तो हिंसा में है. हिंसा दृढ़ता और शक्ति को प्रकट नहीं करती. हिंसा मजबूरी को प्रकट करती है. मैं आज तक किसी ऐसे व्यक्ति, विचार या सत्ता के सम्पर्क में नहीं आया हूं, जिसने हिंसा करते हुए यह न कहा हो कि 'हम तो हिंसा करने के लिए मजबूर थे.' राज्यसत्ता हिंसा करती है क्योंकि उसे व्यवस्था बनाए रखने की मजबूरी है. क्रांतिकारी हिंसा करते हैं क्योंकि राज्य सत्ता ने उन्हें विवश कर दिया है कि वे हिंसा करें. अध्यापक हिंसा करते हैं क्योंकि बिना हिंसा और अनुशासन के बच्चों को सिखाया नहीं जा सकता. बच्चे हिंसा करते हैं क्योंकि हिंसा के बिना समाज सुनने को तैयार नहीं है. तो इस उलटबांसी को हम आत्मसात किए बैठे हैं. और, केवल हम ही नहीं, सारी दुनिया आत्मसात किए बैठी है कि अहिंसा मजबूरी का प्रमाण है और हिंसा ताकत का. मुझे लगता है कि बात उल्टी है. असल में स्वयं हिंसा करने वालों पर अगर आप ध्यान दें, तो पाएंगे कि हर हिंसक व्यक्ति और विचार अपने आपको परिस्थितियों के मजबूर दास के रूप में प्रस्तुत करके ही अपने नैतिक संकट का समाधान कर पाता है.

मुझे एक मार्मिक अनुभव दमदमी टकसाल में हुआ. दमदमी टकसाल खालिस्तानी आंदोलन का नैतिक और बौद्धिक केंद्र था. हम लोग वहां गए. हम वहां तरह-तरह के लोगों से मिले. कम्युनिस्टों से, कांग्रेसियों से, भाजपाइयों से और स्वयं उनसे, जो स्वतंत्र खालिस्तान के लिए आंदोलन चला रहे थे. वहां हमें विस्तार से खालिस्तानी आंदोलन के तर्क को समझाने के लिए लम्बे-लम्बे भाषण पिलाए गये. हम लोग काफी डरे हुए थे, लेकिन बहस चल रही थी. बहस के बीच एकाएक, उस बैठक में जो हमें यह समझाने की कोशिश कर रहे थे कि खालिस्तानी आंदोलन की सफलता के लिए हिंसा और आतंकवाद क्यों अपरिहार्य हैं, वे एकाएक बिना किसी वजह के, बिना किसी क्रम के बोले—'वैसे जी, एक बात है, अगर गांधीजी होते तो पंगा सुलट जाता.' हमें यह बात समझ में नहीं आई. पूछा कि आपके कहने का मतलब क्या है? कैसे सुलट जाता पंगा, गांधीजी के होने से? वे बोले—'देखो जी, ऐसा है कि अगर वे होते तो सारे आतंकवाद और सारी गोलाबारी के बावजूद आते और अमृतसर में भूख हड़ताल पर बैठ जाते.'

मेरे लिए यह एक आध्यात्मिक अनुभव था. मैं ऐसा कुछ नहीं कह रहा हूं कि यह कहने वाला व्यक्ति हिंसा का विरोधी हो गया. मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि ऐसा कहने वाला व्यक्ति गांधी-मार्ग का पथिक या गांधीवादी हो गया. मैं कहना यह चाहता हूं कि गांधी की राजनीति, गांधी का सामाजिक जीवन, गांधी का राजनैतिक जीवन उनके घोर विरोधी के मन में भी संवाद के प्रति आस्था उत्पन्न करता है. ध्यान देने की बात यह है कि भय सबसे पहले संवाद की संभावना को ही समाप्त करता है. और यह प्रयत्नपूर्वक उत्पन्न किया जाता है. यह केवल संयोग नहीं है.

दमदमी टकसाल का जो संस्मरण आपने पढ़ा, उससे ऐसा लग सकता है कि गांधी की महत्ता केवल उनके आत्मबलिदान में है. ऐसा नहीं है. गांधी की महत्ता उनके आत्मबलिदान और उनके साहस में निश्चित रूप से है, लेकिन वह महत्ता उससे आगे भी जाती है. गांधी की महत्ता है उनके विचार में, उनकी अंतर्दृष्टि और उनके विवेक में. हमें इस बात को समझना चाहिए. मज़बूत शब्द ज़ब्त से बनता है– धीरज, सहन करना, धैर्य के साथ खड़े रहना. मज़बूत अनिवार्यतः आक्रामक व्यक्ति को नहीं कहते हैं. मज़बूत उस व्यक्ति को कहते हैं, जिसमें धीरज हो, जिसमें विवेक हो. इस अर्थ में गांधीजी की मज़बूती प्रेरणाप्रद है और शिक्षाप्रद भी.

हमारा वर्तमान क्रूर हिंसा के साधारणीकरण और विकेंद्रीकरण का है. दूसरी चीजों जैसे सत्ता का, धन का, उद्योग का विकेंद्रीकरण हुआ हो या न हुआ हो लेकिन आप अपने आसपास के समाज को देखें तो क्रूरता और हिंसा का अभूतपूर्व विकेंद्रीकरण हुआ है. अब क्रूरता और हिंसा पर केवल राजसत्ता का एकाधिकार नहीं है. आज के क्रांतिकारी भी केवल सफाया नहीं करते,

विधिवत और व्यवस्थित रूप से यातनाएं भी देते हैं. वे केवल वर्ग शत्रुओं का सफाया नहीं करते, वे स्कूली बच्चों से भरी हुई बस को भी बमों से उड़ा देते हैं. वह मुखबिरों के हाथ-पांव काटकर उन्हें जीवन भर तड़पने के लिए छोड़ देते हैं. हिंसा और क्रूरता का विकेंद्रीकरण और हिंसा का ऐसा अभूतपूर्व साधारणीकरण मार्टिन लूथर किंग की उस प्रसिद्ध चेतावनी की याद दिलाता है. यह एक करुण विडम्बना है कि जिस भाषण में मार्टिन लूथर किंग ने ये बात कही थी, वह उनका अंतिम भाषण था. उन्होंने कहा था— 'जिस मोड़ पर हम पहुंच चुके हैं, उस मोड़ पर दुनिया के लिए चुनाव अब नॉन- वायलेंस और वायलेंस के बीच में नहीं है. अब चुनाव नॉन-वायलेंस और नॉन-एग्ज़िस्टेन्स के बीच में है. आप हिंसा और अहिंसा में से एक को नहीं चुन सकते. आपको अहिंसा और सर्वनाश के बीच में से एक को चुनना है.

अहिंसा के प्रसंग में मैं यह दृढ़तापूर्वक कहना चाहता हूं कि उनका कहना कि 'अहिंसा का विचार शाश्वत है, मैं कुछ नया नहीं कह रहा.' यह गांधीजी की विनम्रता है और इसे शब्दशः नहीं लिया जाना चाहिए. जिस अर्थ में गांधीजी अहिंसा की बात करते हैं, वह मानवीय विचार के इतिहास में सर्वथा अभूतपूर्व और मौलिक है. गांधीजी की अहिंसा केवल परंपरा से चली आ रही धार्मिक अहिंसा का विस्तार भर नहीं है. इस बात को हमें अच्छी तरह समझना चाहिए कि संसार के सभी धर्मों में अहिंसा अंततः एक आदर्श है, जिसे पाने का आपको प्रयत्न करना चाहिए. और जिसको न पाने की स्थिति के जस्टिफिकेशन हमेशा आपके पास तैयार रहते हैं. गांधीजी के लिए अहिंसा केवल आदर्श नहीं है. गांधीजी के लिए अहिंसा आपके दैनंदिन जीवन की सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवन की बुनियादी कसौटी है. गांधीजी के लिए अहिंसा केवल आइडियल नहीं है. गांधीजी के लिए अहिंसा बुनियादी जीवन मूल्य है. इस दृष्टि से गांधीजी की अहिंसा पारम्परिक धार्मिक अहिंसा से कहीं आगे की चीज है।

संसार का हर धर्म पवित्र और अपवित्र हिंसा के बीच अंतर करता है. संसार का हर धर्म वध और हत्या के बीच अंतर करता है. हत्या अस्वीकार्य है, वध न केवल स्वीकार्य है बल्कि कई स्थितियों में करणीय है. गोडसे के बयान का अर्थ समझना चाहिए. गोडसे जब भी हिंदी या मराठी बोलता था, तो कभी वह हत्या शब्द का प्रयोग नहीं करता था. गोपाल गोडसे की पुस्तक का शीर्षक ही है 'गांधी वध आणि मी'. यह उसकी मान्यता थी कि वध नैतिक रूप से स्वीकृत, नैतिक रूप से मान्य प्राणहरण की चेष्टा है, जो कि कई बार जरूरी हो जाती है. इसलिए उसे लगता था कि अहिंसा वहां तक ठीक है जहां तक कि वह हमारे विचारों, हमारी अवधारणाओं, हमारी आस्थाओं के अनुकूल हो. अहिंसा अपने आप में कसौटी नहीं है. बल्कि अहिंसा ऐसी प्रविधि है, ऐसी मान्यता है, जिसे हमें आस्था की कसौटी पर कसना है.

हिंसा गहरे विचार की मांग करने वाला विषय है. संगठित और सोद्देश्य हिंसा की असल में एक प्रतीकात्मक शक्ति होती है. हमारे एक मित्र बहुत ही रोचक चुटकुला सुनाते हैं. बड़ा मानीखेज चुटकुला है. मजिस्ट्रेट की अदालत में थानेदार साहब ने एक चोर को पेश किया. कहा- 'हुज़ूर मैंने इसको पकड़ा है.' चोर था एकदम छरहरा, फुर्तीला और थानेदार साहब थे खूब मोटे, थुलथुल. मजिस्ट्रेट को यह देखकर हंसी आ गई. उन्होंने कहा कि 'चोर को आपने पकड़ा है! यह जो भागने लगे तो कहीं का कहीं पहुंचेगा और आपके लिए एक कदम भी उठाना मुश्किल है. आपने कैसे पकड़ लिया इसको?' तो थानेदार साहब ने कहा– 'हुज़ूर, हुकूमत दौड़कर नहीं चलती, इकबाल से चलती है. मैंने एक बार कह दिया खबरदार! खड़े रहना, हिलना नहीं. तो इसकी मजाल थी कि हिल जाता अपनी जगह से?'

संगठित और सोद्देश्य हिंसा असल में इकबाल का मामला है. हिंसा की सजेस्टिव पावर महत्वपूर्ण होती है. और इस बात से तो घोर विरोधी, घोर आलोचक भी इनकार नहीं करेगा कि गांधीजी ने इंपीरियल पावर की हिंसा की सजेस्टिव ताकत को, उसके इकबाल को ख़त्म कर दिया. तोड़ दिया उन्होंने हिंसा की उस ताकत को.

गांधीजी ने बारम्बार दो बातों को स्पष्ट किया है. एक, यह कि अहिंसा और कायरता पर्यायवाची नहीं हैं. कायरता की मूल प्रेरणा वस्तुतः वही है, जो हिंसा की मूल प्रेरणा है. आक्रामकता किसी भी कीमत पर अपने आपको बचाए रखने की प्रेरणा से उत्पन्न होती है और इसी प्रेरणा से कायरता उत्पन्न होती है. जब आप दूसरे को ध्वस्त करके अपने आपको नहीं बचा सकते तो भाग करके अपने आपको बचा लें! हिंसा इस अर्थ में कायरता की सहधर्मी है. हिंसा और कायरता परस्पर विरोधी नहीं हैं. हिंसा और कायरता परस्पर पूरक हैं. गांधीजी गहरे में इस बात को जानते थे. बिलकुल ठीक जानते थे कि अहिंसा और कायरता पर्यायवाची नहीं हैं बल्कि दोनों परस्पर कतई विरोधी नैतिक मनोदशाएं है.

गांधीजी की महत्ता इस बात में है कि यह सारी चीजें, जो अधिक से अधिक व्यक्तिगत आदर्श के रूप में समाज से दूर, पहुंचे हुए महात्माओं की साधना के रूप में प्रचलित थीं, इन सारी चीजों को गांधीजी ने एक व्यापक जनांदोलन का बुनियादी दार्शनिक आधार बना दिया. करुणा की बात गांधीजी के पहले बहुत लोगों ने की है. संयम की बात गांधीजी के पहले बहुत लोगों ने की है, लेकिन करोड़ों लोगों से एक साथ संयम की मांग करने वाले गांधी पहले व्यक्ति थे। उन्होंने कहा कि केवल ईश्वर के साथ नहीं, बल्कि अपने साथी मनुष्यों के साथ, अपने साम्राज्यवादी शोषकों के साथ भी करुणा और संयम का सम्बन्ध रखें. गांधीजी की अहिंसा इस अर्थ में अभूतपूर्व है. इसलिए मैंने कहा कि यह उनकी केवल विनम्रता है.

मैं गांधी नहीं हो सकता लेकिन कम से कम इतना तो जान ही सकता हूं कि किसी भी मनुष्य की तरह मेरे भीतर दो सतत उपस्थितियां हैं—एक गांधी की और एक गोडसे की. और सतत चुनौती है सही चुनाव की. गांधीजी ने सत्याग्रह को परिभाषित किया था, सत्याग्रह का मतलब ही है कि अपने घोर विपक्षी के सत्य में भी, उसकी सम्भावना में भी आस्था रखना. इस बात में आस्था कि किन्ही कारणों से कोई व्यक्ति कितना भी पतित क्यों न हो गया हो, अंततः घोर पतित, घोर पापी, घोर हिंसक मनुष्य भी मनुष्य है. और जब तक उसकी मनुष्यता है, तब तक संभावना शेष है. ❑

उन्हें मापने का हमारा पैमाना छोटा है

गांधीजी के बारे में प्रचलित भ्रांतियां और उनके निवारण

❑ नारायण देसाई

जिसने सार्वजनिक जीवन में पांच-छह दशक बिताया हो, उसके बारे में कुछ-न-कुछ गलतफहमियां हो सकती हैं। जिसने दुनिया के सामने अपनी किताब खुली रखी हो, उसकी जीवन-पुस्तक के अलग-अलग भाष्य होना और गलत निष्कर्ष निकाला जाना भी संभव है। कुछ गलतफहमियां ऐसी होती हैं, जिन्हें सही मायने में गलतफहमी नहीं कहा जा सकता। मतभेद या विरोध, ईर्ष्या या द्वेष आदि के कारण जान-बूझ कर फैलाई गई बातों को गलतफहमी के बजाय अफवाह या दुष्प्रचार कहना ज्यादा सही होगा। गांधीजी के बारे में भ्रांतियां पैदा करने में खुद गांधीजी की कलम भी जिम्मेवार रही है। अपनी भूलों को गांधीजी राई का पर्वत बनाकर पेश करते थे और दूसरा कोई कहे, उससे पहले ही जोर-शोर से अपनी भूल कबूल करते थे। ऐसी स्वीकारोक्तियों के कारण भी गांधीजी के बारे में गलतफहमियां फैली हैं। उनसे कोई अपेक्षा रखने वाले किसी व्यक्ति की अपेक्षा अगर पूरी नहीं हुई, तो उस निराश व्यक्ति की भड़ास भी गलतफहमियां फैलने का सबब बन गई। यहां पेश है गांधीजी के बारे में फैली या फैलायी गयी कुछ भ्रांतियां और उनके जवाब। **–सं.**

गांधीजी ने अपने कुटुंब के प्रति अन्याय किया?

गांधीजी के बारे में यह कहा जाता है कि उन्होंने अपने कुटुंबीजनों के प्रति अन्याय किया; उनका खयाल नहीं रखा या उनकी जैसी मदद करनी चाहिए थी, नहीं की। यह बात अधिक-से-अधिक किसी के संबंध में लागू होती है तो उनके ज्येष्ठ पुत्र हरिलाल के संबंध में। हरिलाल ने गांधीजी के साथ बातचीत में और उन्हें लिखे गए पत्रों में भी इस बारे में अपनी नाराजगी जताई थी।

हरिलाल की मुख्य शिकायत यह थी कि गांधीजी ने उन्हें पढ़ाया नहीं और आगे बढ़ने के लिए विलायत जाने का मौका था तो वह उन्होंने अपने पुत्र के बजाय दूसरे नौजवानों को दे दिया। हरिलालभाई जब पढ़ने लायक हुए तब गांधीजी ठाठ-बाट की जीवन शैली से सादगी की तरफ मुड़ रहे थे। बाल-शिक्षा की बाबत भी वह नए ढंग से सोचने लगे थे। अपने विचारों के अनुसार गांधीजी ने दूसरे बेटों को तो आश्रम की शिक्षा ही दी। पर हरिलालभाई को वह मंजूर नहीं थी। उन्होंने हिंदुस्तान में रहकर पढ़ना पसंद किया। लेकिन वह मेधावी विद्यार्थी नहीं थे, तीन-तीन बार प्रयास करने पर भी वह मैट्रिक पास नहीं कर सके। बड़ा बेटा इस तरह की शिक्षा हासिल करे, यह गांधीजी को पसंद नहीं था। फिर भी उन्होंने हरिलाल को भारत में रहकर पढ़ने की छूट दी थी। इस बीच हरिलाल का ब्याह हो गया, जिसमें गांधीजी के राजकोट में रहने वाले सारे बड़े-बुजुर्ग शामिल हुए थे। बेटे का इतनी जल्दी ब्याह होना गांधीजी को अच्छा नहीं लगा था। पर उन्होंने इसे बर्दाश्त कर लिया। उसके बाद हरिलालभाई दक्षिण अफ्रीका गए। वहां के सत्याग्रहों में खूब उत्साहपूर्वक भाग लिया। लेकिन फिनिक्स आश्रम की जीवन शैली उन्हें ज्यादा रास नहीं आती थी। इंग्लैड में रहने वाले गांधीजी के एक मित्र ने फिनिक्स के किसी नौजवान को इंग्लैड में पढ़ाने का खर्च उठाने का जिम्मा लिया था। हरिलालभाई को लगता था कि गांधीजी उन्हें ही विलायत भेजेंगे, पर गांधीजी ने वैसा नहीं किया। गांधीजी की शर्त थी कि जो लड़का विलायत जाय, वह एक निर्धारित अनुशासन में रहे और वहां से लौटकर फिनिक्स आश्रम में काम करे। पहले-पहल जिस विद्यार्थी को विलायत भेजा गया, वह तबीयत खराब रहने के कारण वापस आ गया। फिर तो हरिलालभाई को उम्मीद थी कि अब उनका ही नंबर आएगा। लेकिन इस बार भी गांधीजी ने एक अन्य नौजवान को पसंद किया। सत्याग्रह के चलते जेल में बैठे हरिलालभाई को यह नागवार गुजरा और आखिरकार उन्होंने अफ्रीका छोड़ने का निश्चय कर लिया। उनकी पत्नी और बच्चे अफ्रीका में ही रहे और वे जब तक वहां रहे, गांधीजी ने उनके रहने-खाने का सारा खर्च उठाया।

भारत आने पर हरिलालभाई कुछ काम-धंधे की तलाश में लग गए। मगर कई जगह कोशिश करने पर भी कहीं स्थिर नहीं हो सके। इस बीच उनकी पत्नी की मौत हो गई। उसके बाद हरिलालभाई की मानसिक स्थिति बहुत बिगड़ गई। अपने पिता की तरह वह भी आत्म-सम्मान वाले, स्पष्टवक्ता और कुटुंबप्रेमी थे। लेकिन किसी काम-धंधे के साथ अपनी पटरी नहीं बिठा सके। इसी बीच उन्हें शराब की लत लग गई और यह लत उन्हें एक घने अंधकार में ले गई। इस दरम्यान पिता-पुत्र में परस्पर प्रेम तो था, पर दोनों का रहन-सहन एकदम अलग था। हरिलालभाई ने अपना धंधा जमाने के लिए कर्ज लिया, पर वह कर्ज चुका नहीं सके, जिससे गांधीजी बहुत व्यथित हुए। गांधीजी तब तक अपनी सारी संपत्ति विसर्जित कर चुके थे, पर अपना पुत्र लिया हुआ कर्ज न चुकाए, यह उनके लिए असह्य वेदना का विषय था।

गांधीजी एक-दो बार हरिलालभाई को अपने पास आश्रम में लाने में सफल हुए थे। पर अपनी कुछ आदतों के कारण हरिलालभाई को आश्रम में रहना बहुत मुश्किल मालूम पड़ता था। इसलिए वह आश्रम छोड़कर चले गए। इस बीच गांधीजी को बदनाम करने में अपनी कामयाबी मानने वाले लोगों ने हरिलालभाई को दारू वगैरह का लालच देकर धर्म परिवर्तन करा दिया। हरिलाल कुछ समय बाद फिर धर्म परिवर्तन करके हीरालाल के रूप में रहने लगे। पर गांधीजी से दूर, लगभग गुप्तवास में। कभी-कभार मिल जाते, तो गांधीजी और कस्तूरबा उन्हें वापस अपने साथ आकर रहने के लिए समझाते। पर यह समझाना-बुझाना बेकार गया।

हरिलालभाई के बच्चों को गांधीजी ने अपने आश्रम में रखकर बड़ा किया। इस प्रकार यह संबंध परस्पर स्नेह का होते हुए भी अलग-अलग जीवन शैली का था। गांधीजी यह मानते थे कि अपनी जीवन शैली या सिद्धांत की बाबत वह कोई ऐसा अपवाद कर ही नहीं सकते। गांधीजी ने अपने पुत्र के साथ अन्याय किया, यह कहने वाले लोग गांधीजी को अपने मापदंड

से मापते हैं। यदि गांधीजी ने अपने प्रभाव का इस्तेमाल करके हरिलालभाई के लिए कुछ सुविधा कर दी होती, तो यही आलोचना करने वाले लोग उन पर पक्षपात करने का आक्षेप लगाते!

यह भी कहा जाता है कि परिवार में अन्य किसी के प्रति गांधीजी ने अन्याय किया, तो वह कस्तूरबा थीं। उनकी आत्मकथा में 'पतित्व' शीर्षक से लिखे प्रकरण के अलावा यह प्रसंग भी आता है कि दक्षिण अफ्रीका में पंचम जाति के साथी का मूत्रपात्र साफ न करने पर कस्तूरबा को गांधीजी ने घर से निकल जाने को कह दिया था। यह प्रसंग खुद गांधीजी ने दुनिया को बताया है। कस्तूरबा दूसरों के तो मूत्रपात्र साफ करने के लिए तैयार हों, पर दलित का मूत्रपात्र साफ करने में हिचकिचाएं, यह गांधी के लिए असह्य था। यह सच है कि उन्होंने आवेश में आकर कस्तूरबा को बाहर का दरवाजा दिखाया, लेकिन जब कस्तूरबा ने उन्हें यह भान कराया कि यह तो दोनों के लिए लज्जा का विषय होगा, तो गांधी फौरन समझ गए और फिर वैसा कोई कदम उन्होंने नहीं उठाया।

गांधीजी के जीवन के साथ-साथ कस्तूरबा के भी जीवन का सतत विकास होता रहा। गांधीजी जो काम बुद्धिपूर्वक करते, उसे कस्तूरबा श्रद्धापूर्वक करतीं। कोई साठ बरस के दांपत्य में जहां कस्तूरबा ने गांधीजी का पूरा साथ दिया, वहीं गांधीजी ने भी कस्तूरबा को स्नेह-आदर दिया। सिद्धांत की खातिर कुटुंबीजनों के कष्टों को नजरअंदाज करना गांधीजी के लिए कोई विचित्र बात नहीं थी। उनकी बड़ी बहन रलियातबेन छुआछूत की भावना से उबर नहीं पाई थीं। गांधीजी उनका आदर करते थे, मिलने पर पांव भी लगते थे, मगर उनके लिए नियम तोड़कर, आश्रम की 'स्पर्श भावना' के साथ समझौता करने को तैयार नहीं हुए।

प्यारेलाल ने लिखा है कि गांधीजी के अन्य तीन पुत्रों को भी जिंदगी के किसी-न-किसी दौर में यह मलाल रहा कि वे प्रचलित शिक्षा हासिल नहीं कर सके। पर प्यारेलाल यह भी बताते हैं कि बाद में तीनों में वंचना का यह भाव दूर हो गया था। तीनों के मन में पिता के प्रति प्रेम, गर्व और भक्ति का भाव था। गांधीजी की कुटुंब-भावना व्यापक होते-होते क्षितिजव्यापी हो गई थी। इसलिए उनके मन में यह आता ही नहीं था कि जिनसे खून का रिश्ता है, उनके साथ दूसरे परिवारों की कीमत पर, विशेष संबंध रखें।

क्या गांधीजी रंग-द्वेषी थे?

एक-दो शंकाएं गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका के प्रवास-काल को लेकर उठाई जाती हैं। आजकल दक्षिण अफ्रीका के कुछ लोग इस बात को लेकर खिन्न होते हैं कि गांधीजी ने उनके लिए एक-दो जगह 'काफिर' शब्द का प्रयोग किया है। इस तरह की शिकायत पर अपने तर्क की इमारत खड़ी करके कुछ दूसरे लोग कहते हैं कि गांधीजी रंग-द्वेषी थे! यह बात सही है कि गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका में रहने तक उनके प्रेम की परिधि जगतव्यापी नहीं हो पाई थी। दक्षिण अफ्रीका में बसे हिंदुस्तानियों के मसलों में ही उन्होंने दिलचस्पी दिखाई और उनके प्रति हो रहे अन्याय को दूर करने के लिए सक्रिय हुए। पूरे देश में काले लोगों के प्रति जो तिरस्कार और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जो रंग-द्वेष नजर आता था, उसकी बाबत गांधीजी ने ऐसा-कुछ न कहा न किया, जो उल्लेखनीय हो। उस समय उनके चिंतन की यह सीमा थी।

यह सही है कि उन दिनों काले लोगों को लेकर हिंदुस्तानी जो शब्द इस्तेमाल करते थे, वही शब्द गांधीजी ने भी एक-दो बार इस्तेमाल किए हैं। फिर, उन्होंने हिंदुस्तानियों का पक्ष रखते हुए एक-दो स्थान पर ऐसी भी भावना व्यक्त की है कि काले लोगों की अपेक्षा हिंदुस्तानी काफी आगे बढ़े हुए हैं। इसलिए दोनों को एक ही तराजू पर रखकर कानून नहीं बनाया जाना चाहिए। इस दलील में यह भाव मौजूद है कि काले लोगों की तुलना में हिंदुस्तानी श्रेष्ठ हैं और यह भाव शायद गांधीजी के लेखों में भी व्यक्त हुआ था। लेकिन मनुष्य-मनुष्य के आपसी व्यवहार की कसौटी पर देखें, तो उन दिनों भी ऐसा आभास नहीं मिलता कि गांधीजी के मन में रंग-द्वेष की भावना थी। जब वह भारत से दूसरी बार अफ्रीका जा रहे थे, तब डरबन बंदरगाह पर उनका विरोध करने के लिए गोरों ने अपने घरों में काम करने वाले कालों का इस्तेमाल विरोध-प्रदर्शन में किया। पर इस वजह से गांधीजी ने काले लोगों के प्रति जरा-भी द्वेष-भाव नहीं दर्शाया।

सत्याग्रह में अधिकतर हिंदुस्तानी थे, इसके अलावा कुछ गोरे, कुछ चीनी और कुछ मलय लोग भी शामिल थे। पर ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि काले रंग के स्थानीय पड़ोसियों के साथ उनका कभी कोई संवाद हुआ हो। जेल में आपराधिक मामले में बंद एक काले कैदी ने गांधीजी को शौचालय से बाहर धकेल दिया था। गांधीजी ने इस घटना के बारे में बताया है, पर उसमें कहीं भी पूरे काले समुदाय के प्रति तिरस्कार का भाव नहीं है।

जुलू विद्रोह के वक्त गांधीजी ने ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति हिंदुस्तानियों की वफादारी सिद्ध करने के लिए डोली उठाने वाली टुकड़ी बनाई थी। वह लड़ाई, लड़ाई ही नहीं थी। गांधीजी ने यह दर्ज किया है कि गोरों ने काले लोगों का एकतरफा संहार किया था। गोरों के विरोध के बावजूद, जख्मी काले लोगों की सेवा गांधीजी ने खूब प्रेमपूर्वक की थी और उनकी भाषा न जानते हुए भी उनके प्रेमभाजन बने थे।

क्या गांधीजी मशीन मात्र के विरोधी थे?

स्वदेशी आंदोलन के तहत जब गांधीजी ने विदेशी कपड़ों की होली जलाने के कार्यक्रम को समर्थन दिया, तब उनके और रवींद्रनाथ ठाकुर के बीच काफी मतभेद उभरे थे और यह सार्वजनिक चर्चा का विषय भी बना था। गांधीजी के परम मित्र सी.एफ. एंड्रूज भी इस मत के थे कि विदेशी कपड़ों की होली न जलाई जाए। इस आंदोलन को लेकर रवींद्रनाथ की दूसरी शिकायत यह थी कि स्वयंसेवक इसमें शामिल होने के लिए जनता पर दबाव डालते हैं। हो सकता है कि दस साल रवींद्रनाथ ने जो स्वदेशी आंदोलन बंगाल में देखा था, उनकी धारणा के पीछे यह अनुभव भी रहा हो। गांधीजी ने खुद यह स्पष्ट कर दिया था कि स्वदेशी आंदोलन में शिरकत के लिए किसी भी तरह से दबाव डालने का तो प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए।

कपड़े जलाने के विरुद्ध रवींद्रनाथ की एक दलील यह थी कि इसमें लोगों का गुस्सा जाहिर होता है, इसलिए यह हिंसा है। गांधीजी ने साफ कर दिया था कि लोगों के मन में जो गुस्सा भरा हुआ है, कपड़े की होली के द्वारा वे लोगों के इस गुस्से को व्यक्ति के बदले वस्तु की तरफ मोड़ देते हैं। गांधीजी ने पूरे देश के

लिए आधे घंटे 'सूत्रयज्ञ' का जो कार्यक्रम सुझाया था, रवींद्रनाथ ने उस पर भी विरोध जताया। सामान्य रूप से रवींद्रनाथ बड़े यंत्रों के समर्थक थे। गांधीजी ने कहा कि मुझे तरस खाकर करोड़ों लोगों को किसी के दिए दान पर नहीं रखना है। इसी के साथ, उन्होंने खुद कपड़ा तैयार कर उसे फख्र से इस्तेमाल करने की सलाह दी थी और चरखे के पक्ष में यह तर्क पेश किया था कि इससे करोड़ों लोगों को आजीविका मिलेगी।

गांधीजी के बारे में एक गलफहमी यह है कि वह यंत्र मात्र के विरोधी थे। गांधीजी ने इस बात से साफ इनकार किया था। उनका कहना था कि हमारा शरीर भी एक जटिल मशीन ही है। क्या मैं इसका विरोध करता हूं? गांधीजी सिर्फ यह चाहते थे कि मनुष्य यंत्रों पर अंकुश रखे, यंत्रों का गुलाम न बने। गांधीजी का सारा दर्शन यंत्र-संस्कृति का विरोधी था, जिसके साथ गलाकाट प्रतिस्पर्धा, लोगों के रोजगार छीने जाने, मानवीय संबंधों के ह्रास और इंसान में बढ़ते बेगानेपन जैसे अनिष्ट भी जुड़े हुए थे। गांधीजी ने यह बात 1909 में ही 'हिंद स्वराज' में लिखी थी। गांधीजी मनुष्य को मशीन का गुलाम बनाने के खिलाफ थे।

क्या गांधीजी के उपवास दबाव डालने के लिए थे?

गांधीजी के उपवासों को लेकर कई बार बड़े-बड़े विद्वान भी गफलत में पड़ जाते थे। मसलन, जब 1918 में अहमदाबाद के मिल मजदूरों और मालिकों के बीच महंगाई भत्ते की दर को लेकर चली समझौते की लंबी बातचीत के अंत में मालिकान अपना रुख बदलने के लिए तैयार नहीं हुए, तो गांधीजी ने मजदूरों को हड़ताल करने की सलाह दी। हड़ताल शुरू होने से पहले उन्होंने मजदूरों से यह प्रतिज्ञा करवाई थी कि जब तक मसला पूरी तरह हल न हो जाए, वे हड़ताल पर टिके रहेंगे। हड़ताल के कुछ दिन बाद कुछ मजदूर ढीले पड़ने लगे। गांधीजी की तरफ से मजदूरों के संपर्क में रहने वाले छगनलाल गांधी को एक बस्ती में यह सुनने में आया कि गांधीजी और अनसूयाबहन तो खाते-पीते हैं और गाड़ियों में घूमते हैं। हम भूखों मरते हैं। जब गांधीजी तक यह बात पहुंची तो वह सोच में पड़ गए।

यह बात तो सही थी कि गांधीजी खा-पी रहे थे, पर यह भी सच था कि मजदूरों ने समाधान होने तक हड़ताल न तोड़ने की सार्वजनिक रूप से प्रतिज्ञा ली थी। गांधीजी ने तब उपवास किया। गुजरात के एक मूर्धन्य विद्वान आनंदशंकर ध्रुव ने कहा था कि यह उपवास मिल-मालिकों पर दबाव डालने के लिए है। गांधीजी का उपवास यों तो मजदूरों को उनकी प्रतिज्ञा पर टिकाए रखने के लिए था। पर गांधीजी ने माना कि किसी हद तक मालिकों पर भी इसका दबाव पड़ता था। इस संबंध में गांधीजी ने अपनी विवशता जताकर मिल-मालिकों से कहा था कि मेरी जान बचाने के लिए नहीं, बल्कि मजदूरों की मांग में कोई औचित्य दिखता हो, तो ही समझौता करें। मामला मध्यस्थ को सौंपा गया। मध्यस्थ ने मामले की पूरी पड़ताल करने के बाद जो फैसला सुनाया, वह पूरी तरह मजदूरों की मांग के मुताबिक था। तब से अहमदाबाद में मालिकों-मजदूरों के आपसी विवादों का हल मध्यस्थ के जरिए निकालने का सिलसिला शुरू हुआ, जो आज तक जारी है।

गांधीजी ने दलितों के लिए कुछ नहीं किया?

गांधीजी के विषय में एक गलतफहमी यह भी फैलाई गई है कि उन्होंने दलितों के लिए कुछ नहीं किया, बल्कि दलितों के लिए जब पृथक मतदाता मंडल की व्यवस्था की जा रही थी, तब 1932 में उन्होंने इसके खिलाफ उपवास किया, जिससे ब्रिटिश प्रधानमंत्री को पृथक मतदाता मंडल का अपना निर्णय वापस लेना पड़ा। ब्रिटिश प्रधानमंत्री अपने उस निर्णय पर एक समय तक ही कायम रहे, क्योंकि उन्होंने यह रुख अख्तियार किया हुआ था कि दलित और गैर-दलित किसी सर्वसम्मत निर्णय पर पहुंचेंगे, तो सरकार अपने फैसले को बदलकर उस निर्णय के अनुसार कानून बनाएगी। सर्वसम्मत निर्णय के मुताबिक ही प्रस्तावित कानून में फेरबदल किया गया। इस फेरबदल से दलितों को लाभ हुआ या नहीं, इस विषय में दो राय हो सकती है और आज भी है। लेकिन गांधीजी ने ताजिंदगी दलितों के लिए कुछ भी नहीं किया, यह कहना अलग बात है, और यहां हम इसी गलतफहमी पर विचार कर रहे हैं।

गांधीजी एकदम छुटपन से ही छुआछूत नहीं मानते थे। जब उनके सार्वजनिक जीवन की शुरुआत हुई तब उन्होंने 'अस्पृश्य' माने जाने वाले लोगों को अपने घर में रखा और घर के सारे कामकाज वे उनके साथ ही बराबरी से करते थे। दक्षिण अफ्रीका से भारत आने पर जब उन्होंने साबरमती नदी के किनारे आश्रम स्थापित किया तब उसमें औरों के साथ एक दलित परिवार को भी बसाया और इस वजह से आश्रम को मिलने वाली मदद बंद होने की नौबत आ गई तो उन्होंने यह निश्चय किया कि दलितों की बस्ती में जाकर रहेंगे और वे जैसे रहते है वैसे ही रहेंगे, पर उपर्युक्त दलित परिवार को आश्रम से अलग तो हरगिज नहीं किया जा सकता। आश्रमवासियों में इस बाबत थोड़ी आनाकानी हुई तो वह अपने स्वजनों तक को छोड़ने के लिए तैयार हो गए, पर दलित कुटुंब को आश्रम से अलग करने के लिए तैयार नहीं हुए।

गांधीजी के आमरण अनशन के कारण पूरे देश में अस्पृश्यता के कलंक की बाबत जैसी जागृति आई, वैसी पहले कभी नहीं आई थी। देश में सैकड़ों मंदिर दलितों के लिए खोल दिए गए। अनेक गांवों में सार्वजनिक कुएं उनके लिए भी सुलभ हो गए और अनेक स्कूलों में दलित बच्चों को अलग बैठाने का चलन बंद हो गया। संक्षेप में कहा जाय, तो इस उपवास के फलस्वरूप छुआछूत का पूरा खात्मा तो नहीं हो गया, पर उसे अवांछित व्यवहार जरूर माना जाने लगा। इस उपवास के बाद गांधीजी ने दलितों की सेवा के लिए हरिजन सेवक संघ की स्थापना की और मृत्यु पर्यन्त इस काम के लिए चंदा जुटाते रहे।

गांधीजी ने खुद महाराष्ट्र के गांवों में मल-मूत्र की सफाई की थी। उनके आश्रम में तो अन्य सेवाओं की तरह यह काम भी तमाम आश्रमवासी स्वेच्छा से करते थे। स्वराज आया तब गांधीजी के ही आग्रह पर देश के प्रथम मंत्रिमंडल में कानूनमंत्री के तौर पर डॉ बाबासाहब आंबेडर को शामिल किया गया था और गांधीजी के ही आग्रह पर उन्हें देश का संविधान बनाने की समिति में सबसे अहम जिम्मेदारी सौंपी गई थी। जीवन के आखिरी दशक में गांधीजी का यह भी आग्रह रहता था कि वह ऐसे ही विवाह में शरीक होंगे, जिसमें वर-वधू में से कोई एक दलित और दूसरा गैर-दलित हो। *...क्रमशः अगले अंक में*

(मूल गुजराती से हिन्दी अनुवाद राजेन्द्र राजन)

अध्यक्ष की कलम से

नचिकेता देसाई और साबरमती आश्रम : महात्मा गांधी के सचिव तथा साबरमती आश्रम के पूर्व ट्रस्टी महादेव देसाई के पौत्र और साबरमती आश्रम के पूर्व अध्यक्ष व आश्रम के पूर्व ट्रस्टी नारायण देसाई के पुत्र एवं वरिष्ठ पत्रकार नचिकेता देसाई लखनऊ में महिला कार्यकर्ता सदफ जफर पर पुलिस के हमले एवं उनकी गिरफ्तारी से अत्यंत आहत हुए। उन्होंने इसके विरुद्ध साबरमती आश्रम में मौन उपवास करने का निर्णय लिया और इसकी जानकारी आश्रम वालों को दी। आश्रम के निदेशक ने उन्हें मेल भेजकर कहा कि आश्रम

में इसकी अनुमति नहीं है। ये बात उस आश्रम में कही गयी, जहां से बापू ने दांडी कूच की शुरुआत की थी। गांधी के रास्ते पर चलने वालों को साबरमती आश्रम में जगह नहीं है, पर सरकार के लिए लाल कालीन बिछाये जाते हैं। पिछले दिनों ऐसा ही एक सरकारी कार्यक्रम इस आश्रम में हुआ।

इसके बाद 24 दिसम्बर को नचिकेता देसाई आश्रम में बापू की प्रतिमा के पास जाकर चुपचाप बैठ गये। उनके साथ न तो कोई बैनर था और न ही वे कोई नारा लगा रहे थे। आश्रम के ट्रस्टियों को यह नागवार गुजरा। नचिकेता देसाई के अनुसार आश्रम के ट्रस्टियों तथा अधिकारियों ने उन्हें वहां से उठाकर आश्रम के बाहर पुलिस के हवाले कर दिया। आश्रम के एक ट्रस्टी ने इंडियन एक्सप्रेस से बातचीत में

कहा– *यह अब गांधी का आश्रम नहीं है, साबरमती आश्रम एवं मेमोरियल एंड प्रिजर्वेशन ट्रस्ट बन गया है।* इस घटना के बाद तरुण शांति सेना के वरिष्ठ कार्यकर्ता अशोक भार्गव ने लिखा– *''गांधी, साबरमती एवं सेवाग्राम आश्रम को छोड़कर जेएनयू एवं अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी के छात्रों के बीच चले गये हैं।''*

गांधी के विरुद्ध विषवमन : 25 दिसम्बर 2019 को हरियाणा के कैथल से भाजपा के विधायक लीलाराम गुर्जर ने कहा – ''यह नेहरू और गांधी का हिन्दुस्तान नहीं, नरेन्द्र मोदी और अमित शाह का हिन्दुस्तान है।'' आगे उन्होंने कहा कि अगर इशारा हो जाए, तो एक घंटे में सफाया कर देंगे। बीच-बीच में भाजपा के सांसदों, विधायकों एवं अन्य नेताओं द्वारा गांधी के विरुद्ध विषवमन किया जाता रहा है। इसका मतलब साफ है—गांधी का अपमान वे अपना धर्म समझते हैं। उनका विश्वास लोकतंत्र में नहीं, हिंसा में है।

नारों से प्रकट होते संस्कार : पिछले महीने की 25 तारीख को अहमदाबाद की तथाकथित नागरिक समिति की ओर से साबरमती आश्रम के बाहर नागरिकता कानून के समर्थन में एक रैली आयोजित की गई। कार्यक्रम अहमदाबाद की सबसे मुख्य सड़क आश्रम मार्ग पर हुआ। इस कार्यक्रम के लिए आयोजित इस रैली में गुजरात के मुख्यमंत्री ने कहा – मुसलमान अपने रहने के लिए 150 इस्लामी देशों में से किसी को भी चुन सकते हैं, पर हिन्दुओं के लिए एकमात्र देश भारत ही है।

रैली में भारत माता की तस्वीर लगायी गयी थी, पर उनकी भारत माता के हाथ में तिरंगा नहीं, भगवा झंडा था और एक तस्वीर गांधी की भी लगायी गयी थी और गांधी की तस्वीर के सामने वे लोग नारा लगा रहे थे— 'देश के गद्दारों को, गोली मारो सालों को।' सिर्फ इस एक नारे से उनके संस्कार का पता चलता है।

सीएए और मेरी गिरफ्तारी : 29 दिसंबर को अहमदाबाद के विभिन्न कॉलेजों के छात्रों ने सीएए के प्रति गुजरात युनिवर्सिटी के पास अपना विरोध प्रकट करने के लिए पुलिस से अनुमति मांगी थी। पुलिस ने हामी भी भरी थी, पर अंतिम समय अनुमति रद्द होने की बात

कही। यह सब शांतिपूर्ण ढंग से होने वाला था पर ऊपर के इशारे पर पुलिस ने अनुमति रद्द कर दी। जब मुझे इसकी जानकारी मिली तो मैं युनिवर्सिटी थाने के पुलिस निरीक्षक को समझाने गया। उल्टे पुलिस ने मुझे, नीता महादेव तथा 80 से अधिक छात्रों को हिरासत में ले लिया तथा करीब 5 घंटे तक थाने में रखा। ठीक उसी दिन अहमदाबाद के खड़िया इलाके में भाजपा को सीएए के समर्थन में जुलुस निकालने की अनुमति दी गयी। इससे साफ है कि पुलिस का मापदंड दोहरा है।

मुंबई, कोचीन, हैदराबाद आदि महानगरों में इस कानून के विरोध में लाखों की शांतिपूर्ण रैली निकली। कहीं कोई घटना नहीं हुई। पर भाजपा शासित राज्यों में कानून व्यवस्था के बहाने नागरिकों की आवाज को दबाया जा रहा है। ❑

किसी का प्राणहरण भी अहिंसक हो सकता है!

–गांधी

चैप्लिन का गांधी—सर्व सेवा संघ प्रकाशन ने अभी-अभी यह उपन्यास प्रकाशित किया है। यह सिर्फ उपन्यास नहीं है, एक इतिहास है, जो किस्सागोई की शैली में लिखा गया है। बिना किसी जटिलता के एक गंभीर वैचारिकी को सहज एवं सरल भाषा में व्यक्त किया गया है। न विन्यास का बोझ है और न कोई तिलिस्म। पूरे उपन्यास में चैप्लिन और गांधी के व्यक्तित्व की रवानी है बस। लेखन में आवेग की प्रवणता है तो उद्दाम भी है। कथानक कहीं झकझोरता है तो कहीं ठिकाना भी देता है। इसमें अंतर्निहित दिलचस्पी का चुम्बकत्व इतना शक्तिशाली है कि एक बार पढ़ना शुरू करने के बाद आप कहीं रुकते नहीं हैं, बेचैन बने रहते हैं। यहां हम उसी भावप्रवण कहानी का एक अंश पेश कर रहे हैं। लेखक ने गांधी के हवाले से हिंसा और अहिंसा की विवेचना का एक नया पाठ रचा है। **–सं.**

अहिंसक प्राणहरण!

प्रेमपंथ पावक नी वाला भाली पाछा भागे जोने (प्रेम का पंथ पावक की लपट है, लोग उसे देखते ही भाग खड़े होते हैं।) अहिंसा-धर्म का पंथ प्रेम का पंथ है। इस पंथ पर आदमी को अकसर अकेले ही चलना पड़ता है। मैंने कई प्रश्न अपने मन में विचारे और मित्रों से उन पर चर्चा की। सवाल उठा कि मांसाहार के लिए जो कुछ आप एक बछड़े के साथ करना चाहते हैं, क्या वैसा ही अपने साथ भी करना पसंद करेंगे? किसी अन्य मनुष्य के साथ भी वही करने को तैयार हो सकेंगे? मुझे लगा कि इन सभी मामलों में एक ही न्याय लागू होता है। मुझे यह स्पष्ट जान पड़ा कि यहां अगर 'यथा पिंडे तथा ब्रह्मांडे' का नियम लागू न होता हो, तो बछड़े के प्राण नहीं लिये जा सकते। ऐसे दृष्टांतों की कल्पना की जा सकती है, जब कि मारने में ही अहिंसा हो और न मारने में हिंसा। मान लें कि मेरी लड़की स्वयं कोई राय देने लायक न हो, उस पर कोई आक्रमण करने आ जाये और मेरे पास उसे रोकने का कोई दूसरा मार्ग ही न हो, ऐसी स्थिति में यदि मैं अपनी लड़की के प्राण लूं और आक्रमणकारी की तलवार के घाट उतर जाऊं तो इसमें मैं शुद्ध अहिंसा देखता हूं। बीमारी से दुखित प्रियजनों को हम नहीं मारते, सो इसलिए कि उनकी सेवा करने के साधन हमारे पास होते हैं और वे अपनी राय रखते हैं। किंतु सेवा शक्य न हो, जीने की आशा ही न हो, रोगी बेहोश हो और महादुख भोग रहा हो, तो मैं उसके प्राणहरण में लेशमात्र भी दोष नहीं देखता।

जिस तरह रोगी के भले के लिए उसके शरीर में चीर-फाड़ करके डॉक्टर हिंसा नहीं

करता, बल्कि शुद्ध अहिंसा का ही पालन करता है, उसी तरह इससे जरा और आगे जाकर किसी के प्राण लेना भी अहिंसा का पालन हो सकता है। यह तर्क पेश किया गया कि चीर-फाड़ में रोगी के अच्छे होने की सम्भावना होती है, प्राणहरण तो उस सम्भावना को ही समाप्त कर देता है। किंतु विचार करने पर जान पड़ेगा कि दोनों में साम्य वस्तु एक ही है। प्राण लेने और चीर-फाड़ करने, दोनों ही बातों में मंशा शरीर में स्थित आत्मा को दुख-मुक्त करना है। शरीर में चीड़-फाड़ करके सुख शरीर को नहीं, आत्मा को पहुंचाना है। आत्मारहित शरीर में सुख-दुख भोगने की शक्ति ही नहीं होती है।

गांधी ने अपने तर्क से पूरे प्रसंग को सार्वजनिक विमर्श का मुद्दा बना दिया! उन्होंने कहा - ''मृत्युदंड का जो डर आजकल समाज में दिखलाई पड़ता है, वह अहिंसा-धर्म के प्रचार में बहुत बाधक है। किसी को गाली देना, किसी का बुरा चाहना, किसी का ताड़न करना, कष्ट पहुंचाना, सभी-कुछ हिंसा है। जो मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए दूसरे को कष्ट पहुंचाता है, उसका अंग-भंग करता है, भर पेट खाने को नहीं देता, और अन्य किसी तरह से उसका अपमान करता है, वह मृत्युदंड देने वाले की अपेक्षा कहीं अधिक निर्दयता दिखलाता है। जिसने अमृतसर की गली में लोगों को चींटी के समान पेट के बल चलाया, अगर उसने उन्हें मार डाला होता तो वह कम घातक गिना जाता। अगर कोई यह माने कि पेट के बल रेंगवाना मृत्युदंड से हल्की सजा है, तो मुझे यह कहने में जरा भी संकोच नहीं है कि वह आदमी अहिंसा को नहीं जानता।

केवल मरण में से ही किसी आदमी को या पशु को थोड़े समय के लिए बचा लेने में अहिंसा है - यह मान्यता एक वहम है, और मैं इससे आज देश में घोर हिंसा होते हुए देखता हूं। एक दुखी, महापीड़ित पशु के प्राण लेने से जो आघात पहुंचता है, उसके साथ मैं जब असंख्य प्रकार की चलती हुई निर्दयता के संबंध में उदासीनता की तुलना करता हूं, तब यह प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है कि हम अहिंसाधर्मी हैं या अहिंसा के नाम पर जान-बूझकर या अनजाने अधर्म का आचरण करने वाले हैं?

हमारे अविचार और भीरुता के कारण मैं तो पग-पग पर हिंसा होते देख रहा हूं। हमारे पिंजरापोल और हमारी गोशालाएं हिंसा का स्थान बन गई हैं। स्वार्थ से अंधे होकर हम रोज ही अपने पशुओं पर अत्याचार करते हैं, उन्हें कष्ट पहुंचाते हैं। अगर उनके जबान होती तो वे अवश्य कहते कि हमें इस तरह जो कष्ट देते हो, उसके बदले हमें मार ही डालो तो हम तुम्हारा यश गायें। मैंने तो अनेक बार उनकी आंखों में ऐसी प्रार्थना पढ़ी है। इस पर यह कहा जा सकता है कि स्वार्थ के वश होकर या क्रोध में किसी भी जीव को कष्ट दिया जाये या

उसके अनिष्ट या प्राणहरण की इच्छा भी की जाये, तो वह हिंसा है। निःस्वार्थ बुद्धि से, शांत चित्त से, किसी भी जीव की भौतिक या आध्यात्मिक भलाई के लिए दिया गया दुख या उसका प्राणहरण शुद्ध अहिंसा हो सकता है। प्रत्येक दृष्टांत का विचार करके ही यह कहा जा सकता है कि ऐसे दुख या प्राणहरण कब अहिंसक कहे जायेंगे। अंततः अहिंसा की परीक्षा का आधर भावना पर ही रहता है।

हिंसक प्राणहरण

गांधी ने आश्रम पर छाये एक अलग संकट का उल्लेख कर 'हिंसक प्राणहरण' पर भी देश में आजादी के संघर्ष में लगे आम और खास लोगों को वैचारिक विमर्श के घेरे में ले लिया। उन्होंने लिखा - ''प्रस्तुत दृष्टांत से उल्टा एक दूसरा संकट आश्रम पर है। पहले का निवारण सम्भव हुआ लेकिन दूसरे का उपाय अभी प्राप्त नहीं हुआ है। आश्रम में 'बंदरों' का उपद्रव दिनों-दिन बढ़ता ही जा रहा है। वे फलों और शाक-भाजी को बरबाद कर देते हैं। इस उपद्रव से बचने का उपाय मैं खोज रहा हूं। जो इस संबंध में रास्ता बतला सकते हैं, वैसे लोगों की सलाह ले रहा हूं। मुझे अब तक कोई निर्दोष उपाय नहीं मिला है।

किंतु अनेक आदमियों के साथ चर्चा करता हूं, इसलिए शहर में तरह-तरह की अफवाहें फैली हुई हैं और मेरे पास कई कटु पत्र आये हैं। एक पत्र लेखक मानते हैं कि आश्रम में तीर से बंदरों को घायल किया जाता है, इस कारण कितने ही बंदर मर भी गये हैं। यह खबर झूठी है। बंदरों को हांक निकालने का प्रयत्न अवश्य किया जाता है और उसमें तीर भी काम में लाये गये हैं किंतु न तो किसी बंदर को घायल किया गया, और न कोई बंदर इस प्रकार मरा है। घायल करने की बात खुद मेरे लिए असह्य है। अनिवार्य हो जाये तो उन्हें मार डालने के बारे में मैं चर्चा कर रहा हूं। किंतु यह प्रश्न बछड़े के प्रश्न की तरह आसान नहीं है। बंदर को मार भगाने में मैं शुद्ध हिंसा ही देखता हूं। यह भी स्पष्ट है कि अगर उन्हें मार डालना पड़े, तो उसमें अधिक हिंसा होगी। यह हिंसा तीनों काल में हिंसा ही गिनी जायेगी। उसमें बंदर के हित का विचार नहीं, आश्रम के हित का विचार है।

देहधारी जीव मात्र हिंसा से ही जीते हैं। उसके परम धर्म को सूचित करने वाला शब्द आखिर नकारात्मक निकला। जगत्-यानी देहमात्र हिंसामय है। और इसी कारण अहिंसा-प्राप्ति के लिए देह के आत्यंतिक मोक्ष की तीव्र इच्छा पैदा होती है। हिंसा के बिना कोई देहधारी प्राणी जी ही नहीं सकता। जीने की इच्छा छूटती नहीं है। मन अनशन करके देह छोड़ने की इच्छा नहीं करता। देह 'अनशन' करे और मन न करे तो यह मिथ्याचार कहलायेगा, और आत्मा को अधिक बंधन में डालेगा। ऐसी करुणाजनक स्थिति में रहकर जीने के लिए विवश जीव भला क्या करे? कैसी और कितनी हिंसा को अनिवार्य माने? समाज ने कुछ एक हिंसाओं को अनिवार्य मानकर व्यक्ति को विचार करने के भार से मुक्त कर दिया है। तो भी प्रत्येक जिज्ञासु के लिए अपना क्षेत्र समझ कर उसे नित्य छोटा करते जाने का प्रयत्न तो बचा ही रहता है।

इस दृष्टि से खेती के व्यापक धंधे में जो हिंसा है, उसकी मर्यादा का निश्चय अहिंसा-धर्म का पालन करने की इच्छा रखने वाले किसान को करना है। मैं अपने को किसान मानता हूं। मेरे सामने कोई सीधी लीक नहीं है। प्रत्येक किसान बिना विचारे किसी-न-किसी तरह से अपना काम चला ही लेता है। क्योंकि शिष्ट-वर्ग ने उसकी अवगणना की है। उसके जीवन में भाग नहीं लिया, दिलचस्पी नहीं ली और किसान अपने जीवन में उत्तरोत्तर उन्नति नहीं कर सके, इसलिए मेरे जैसे किसान को तो अपना मार्ग ढूंढ़कर, दूसरे किसान भाइयों के लिए, हो सके तो मार्गदर्शक बनना ही है। इसी तरह खेती पर लागू होने वाले जो अनेक प्रश्न नित्य पैदा होते हैं, उनमें से बंदरों का अटपटा प्रश्न भी एक है। किंतु उसे जान से मारने में हिंसा तो है ही; इसलिए यह अंतिम कार्रवाई करने के पहले जितने लोगों की सलाह ली जा सके, मैं उतने लोगों की सलाह ले लेना चाहता हूं।

मैंने सुना है कि गुजरात के किसान ऐसे लोग रख देते हैं कि उन्हें देखते ही डर कर बंदर भाग जाते हैं और किसान इस तरह यह मानते हैं कि हम अंतिम हिंसा से बच गये। यह मुमकिन है, किंतु यदि न हो तो उसके बाद जान से मारना ही रह जाता है। मैं जानता हूं कि बंदर ऐसे विलक्षण होते हैं कि जब वे समझ लेते हैं कि उन्हें कोई मारेगा नहीं, तब वे गोलियां छोड़ते रहो तब भी नहीं डरते, उल्टे मुंह चिढ़ाने और खिखियाने लगते हैं। इसलिए सलाह देने वाले कोई सज्जन यह न मानें कि इस उपद्रव से खेती को बचाने का ऐसा कोई रास्ता है जिस पर आश्रम ने सोचा-विचारा नहीं है। अभी तक जितने उपाय सामने आये हैं, उन सबमें हिंसा तो है ही। यदि बिना हिंसा के इस उपद्रव से खेती को न बचाया जा सके तो यही विचार करना रह जायेगा कि कम-से-कम कितनी हिंसा करके उसे बचाया जा सकता है। इसमें मैं अनुभवी सज्जनों की मदद चाहता हूं।

(गुजराती 'नवजीवन', 30-9-1928)

❑

जो कातिल रह चुका है

❑ हसन कमाल

अभी चुप हैं, रहेंगे चुप हमेशा हो नहीं सकता,
हमारा यार भी वाकिफ़ है, ऐसा हो नहीं सकता।
हमारे और उसके दरमियां एक जंग जारी है,
वो सज़दा चाहता है हमसे, सजदा हो नहीं सकता।
अदाकारी पर जिसकी, शख़्सियत हो मुनहसिर सारी,
वह सच्चा लग तो सकता है, पर सच्चा हो नहीं सकता।
बदल ले भेष या लहजा, अपना खुशनुमा कर ले,
जो कातिल रह चुका है, वह मसीहा हो नहीं सकता।

लाजिम है कि हम भी देखेंगे

❑ दयानंद पांडेय

देश में नागरिकता कानून के खिलाफ चल रहे देशव्यापी आंदोलन के दौरान सुप्रसिद्ध शायर फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ की प्रसिद्ध नज़्म 'हम देखेंगे' पर विवाद खड़ा कर दिया गया है। कहा गया है कि यह नज़्म हिन्दू विरोधी है। इस आलेख में व्यक्त विचार इस विवाद की गहन पड़ताल करते हैं। **–सं.**

फैज़ अहमद फैज़ ने 1977 में यह नज़्म तब लिखी थी जब पाकिस्तान में तत्कालीन सेनाध्यक्ष जनरल जिया उल हक़ ने जुल्फिकार अली भुट्टो का तख्ता पलट दिया था। जिया उल हक़ को तब ज़बरदस्त विरोध झेलना पड़ा था। फैज़ को यह नज़्म लिखने के कारण तब पाकिस्तान छोड़ना पड़ा था। यह लगभग वही समय था, जब भारत में भी इमरजेंसी बस विदा हो रही थी और नई सरकार की दस्तक थी। जब मोरार जी सरकार बनी तब अटल बिहारी वाजपेयी विदेश मंत्री बने। बतौर विदेश मंत्री जब अटल जी पाकिस्तान गए तो प्रोटोकॉल तोड़ कर वह फ़ैज़ से मिले थे। उन्होंने पाकिस्तान में फ़ैज़ की रचनाएं सुनीं और उन्हें भारत आने का निमंत्रण दिया। फ़ैज़ भारत आए भी और दिल्ली, इलाहाबाद, मुंबई समेत कई शहरों में घूमे। फैज़ ने यह नज़्म भारत में सब से पहले इलाहाबाद में ही पढ़ी थी। कोई चार दशक पहले इलाहाबाद के मुशायरे में यह नज़्म इस कदर पसंद की गई कि फैज़ को इसे बार-बार पढ़ना पड़ा था। यह नज़्म तभी से भारत के लोगों के दिल-दिमाग में बस गई।

लेकिन क्या कीजिएगा, जो लोग साहित्य नहीं जानते, कविता नहीं जानते, इस की पवित्रता नहीं जानते, वही लोग इस तरह की मूर्खता और कुटिलता की बात कर सकते हैं। नफरत और घृणा की राजनीति का हश्र यही होता है। फ़ैज़ और उन की इस मशहूर नज़्म के साथ यही हो रहा है। फ़ैज़ कम्युनिस्ट थे। लेकिन कम्युनिस्ट होने के बावजूद अल्ला में यक़ीन रखते थे। 'हम देखेंगे' नज़्म के आख़िरी बंद में वे लिखते ही हैं—बस नाम रहेगा अल्लाह का। सारा विवाद इसी का है। अरे, आप अल्ला की जगह भगवान लिख लीजिए, भगवान पढ़ लीजिए। दिक्कत क्या है। उट्ठेगा अन-अल-हक़ का नारा का मतलब आप अहम् ब्रह्मास्मि में तलाश लीजिए। लेकिन किसी कविता का, किसी शायर का फ़ैसला लेने वाले आप होते कौन हैं? इस अल्ला का मेटाफ़र अगर आप को नहीं समझ आता तो यह आप की बदकिस्मती है, फ़ैज़ की नहीं। फ़ैज़ से आप किसी बात पर, उन की नज़्म या किसी ग़ज़ल पर, किसी कहे पर असहमत हो सकते हैं। निंदा कर सकते हैं। यह आप का अधिकार है। लेकिन फ़ैज़ की किसी रचना पर कोई फ़ैसला देने वाले आप होते कौन हैं?

जैसे रामचरित मानस के सुंदरकांड में उल्लिखित ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी सकल ताड़ना के अधिकारी को लेते हैं। दलितों और स्त्रियों को भी इसी बहाने भड़का कर अनाप-शनाप लिखने और बोलने लगते हैं। यह सिलसिला आज भी जारी है। अब सोचिए कि तुलसी के रामचरित मानस की जुबान क्या है? अवधी। और अवधी में ताड़ना का अर्थ होता है, खयाल रखना। तो तुलसी ने क्या गलत लिखा है? पहले जुबान समझिए, भाषा समझिए। भाषा का मिजाज समझिए। फिर कुछ कहिए और लिखिए। तुलसी महाकवि हैं लेकिन लोग तो तुलसी को भी गाली देते हैं। अब इसी तरह कुछ लोग फ़ैज़ के साथ यही सुलूक कर रहे हैं। यह ग़लत है। यह सब वैसे ही है, जैसे कुछ मूढ़मति बंकिम बाबू की रचना वंदे मातरम पर सांप्रदायिक रंग चढ़ा देते हैं। अपनी माटी, अपनी मातृभूमि की वंदना सांप्रदायिक कैसे हो

हम देखेंगे

❑ फ़ैज़ अहमद फ़ैज़

लाजिम है कि हम भी देखेंगे
वो दिन कि जिसका वादा है
जो लोह-ए-अज़ल में लिक्खा है
जब ज़ुल्म-ओ-सितम के कोह-ए-गरां
रुई की तरह उड़ जाएँगे
हम महकूमों के पाँव तले
ये धरती धड़-धड़ धड़केगी
और अहल-ए-हक़म के सर ऊपर
जब बिजली कड़-कड़ कड़केगी
जब अर्ज-ए-ख़ुदा के काबे से
सब बुत उठवाए जाएँगे
हम अहल-ए-सफ़ा, मरदूद-ए-हरम
मसनद पे बिठाए जाएँगे
सब ताज उछाले जाएँगे
सब तख्त गिराए जाएँगे

बस नाम रहेगा अल्लाह का
जो ग़ायब भी है हाजिर भी
जो मंज़र भी है नाजिर भी
उट्ठेगा अन-अल-हक़ का नारा
जो मैं भी हूँ और तुम भी हो
और राज़ करेगी खुल्क-ए-ख़ुदा
जो मैं भी हूँ और तुम भी हो

हम देखेंगे

❑ विपुल नागर

निश्चित है कि हम भी देखेंगे
वो दिन कि जिसका वचन मिला
जो वेदों में लिख रखा है

जब अत्याचार का पर्वत भी
रुई की तरह उड़ जाएगा
हम प्रजाजनों के कदम तले
जब पृथ्वी धड़ धड़ धड़केगी
और शासक के सर के ऊपर
जब बिजली कड़ कड़ कड़केगी

जब स्वर्गलोक-सी पृथ्वी से
सब असुर संहारे जाएँगे
हम दिल के सच्चे और वंचित
गद्दी पर बिठाए जाएँगे
सब मुकुट उछाले जाएँगे
सिंहासन तोड़े जाएँगे

बस नाम रहेगा ईश्वर का
जो सगुण भी है और निर्गुण भी
जो कर्ता भी है साक्षी भी
उठेगा 'शिवोऽहम्' का नारा
जो मैं भी हूँ और तुम भी हो

और राज करेगा ब्रह्म-पुरुष
जो मैं भी हूँ और तुम भी हो।

सकती है भला। वंदे मातरम हमारा गौरव है। हमारा राष्ट्रगीत है। राष्ट्रगान जैसा ही सम्मान वंदे मातरम को भी दिया जाना चाहिए।

एक समय था कि कुछ लोगों को रवींद्रनाथ टैगोर के लिखे राष्ट्रगान जनगणमन में पंजाब, सिंध, मराठा पंक्ति में सिंध खटकने लगा। वे मांग करने लगे कि जब भारत में सिंध नहीं है, तो इस राष्ट्रगान से सिंध शब्द हटा दीजिए। साहित्य के ज़िम्मेदार लोगों ने इस विवाद में दखल दिया और स्पष्ट बता दिया कि किसी कविता में कोई और किसी तरह का बदलाव नहीं कर सकता। गनीमत थी कि इस विवाद के समय टैगोर जीवित नहीं थे। तब इतना हिंदू, मुसलमान भी नहीं था। सो विवाद पर पानी पड़ गया। बात ख़त्म हो गई। फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ भी अब जीवित नहीं हैं। लेकिन उन की गज़लें, नज़्म और लेख मौजूद हैं। सो हिंदू, मुसलमान का झगड़ा अपने वोट बैंक तक ही रखिए। साहित्य को इस दलदल में न घसीटिए तो बहुत बेहतर।

फ़ैज़ इंकलाबी शायर थे और पाकिस्तानी हुक्मरानों को वह सर्वदा खटकते रहे, जेल भुगतते रहे। पाकिस्तान निकाला भुगतते रहे। फ़ैज़ की यह नज़्म एक ज़माने से लोग अपने विरोध प्रदर्शनों में गाते आ रहे हैं। हम ने भी बहुत गाया और पढ़ा है। सब ताज उछाले जाएंगे/सब तख़्त गिराए जाएंगे—गाते हुए नसें फड़कने लगती हैं। पर इस नज़्म को ले कर अभी तक तो कभी कोई विवाद नहीं हुआ था। विवाद अब हुआ है जब भारत में हिंदू, मुसलमान का विवाद अपने चरम पर आ गया है। सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा, लिखने वाले मोहम्मद इकबाल हिंदूवादियों को पहले ही से खटकते रहे हैं। लेकिन पहले दबी जुबान थे, अब खुली जुबान हैं। अब फ़ैज़ भी इकबाल की राह पर हैं।

सच तो यह है कि रचनाकार कोई भी हो, किसी भी भाषा, किसी भी धर्म और किसी भी देश या विचारधारा का हो, उन्हें साहित्य की कसौटी पर साहित्यकारों को ही कसने दें। रचनाकारों की किसी रचना पर किसी गैर साहित्यिक संस्था, राजनीतिक पार्टी आदि को जजमेंटल होने की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए। आईआईटी, कानपुर ने फ़ैज़ की नज़्म पर अपनी जांच कमेटी बैठा कर बहुत बड़ी गलती की है। समय रहते उसे कुछ सकारात्मक सोचना चाहिए। सहूलियत के लिए इस आलेख के साथ छपी फैज़ की इस उर्दू नज़्म का हिंदी अनुवाद पढ़ लीजिए एक बार। सारा भ्रम दूर हो जाएगा। ❑

महात्मा गांधी की शरण खोजता असुरक्षित विश्व

❑ डॉ. श्रीपाल सबनीस

आज पूरा विश्व बारूद की गंध से भयभीत है। इस्त्रायल और फिलीस्तीन पाकिस्तान और भारत, चीन और हांगकांग, उत्तर कोरिया और अमेरिका, अमेरिका और ईरान जैसे देशों के बीच रिश्तों का तनाव और संघर्ष की आशंका चरम पर है। कमोवेश हर देश की सीमा पर संघर्ष है। जहां सीमा का संघर्ष नहीं है, वहां अहम् का संघर्ष है। यानी किसी भी वजह से है, लेकिन संघर्ष है। और इस संघर्ष का जवाब क्या है? जवाब है महात्मा गांधी।' गांधीजी का संबंध भारत से होने के कारण भारत का सत्य, अहिंसावादी दर्शन विश्व समुदाय को शांति का विश्वास और एहसास दिलाता है। संभवतः इसी कारण तीसरे महायुद्ध की आग से बचकर निकली दुनिया भारत की ओर उम्मीद से देखती है। गांधीजी हिन्दू धर्म से आते हैं। लेकिन उन पर महावीर की अहिंसा और बुद्ध की करुणा का भारी प्रभाव दिखाई देता है। साथ ही ख्रिस्त और पैगम्बर की सेवा तथा शांति से भी वे गहरे प्रभावित थे। इसलिए वैश्विक कर्तृत्व के संस्कार गांधीजी के व्यक्तित्व में हम अनुभव कर सकते हैं।

गांधी स्वातंत्र्य की आवाज बने। गांधी सर्वसामान्य की पहचान बने। गांधी सत्य-अहिंसा के आदर्श बने। गांधी श्रमिक-दलित-गरीबों के मसीहा बने। गांधी गांव और गांव की अस्मिता के तत्वज्ञ बने। गांधी विज्ञान और अध्यात्म को जोड़ने वाले वकील बने। गांधी समानता और संस्कृति के लोकशिक्षक बने। गांधी का व्यक्तित्व धर्म, संस्कृति, देश और विश्व के संबंध में अंत तक ईमानहार रहा। जिन्दगी के इतने व्यापक आयामों से संयुक्त होकर बने अहिंसा को संपूर्ण समर्पित एक उदार जीवन का अन्त एक हिन्दू की हिंसा से हुआ, यह हिन्दू धर्म और भारत के लिए शर्म की बात है। गांधीजी खुद को 'सनातनी हिन्दू' मानते थे। फिर भी उनको हिन्दू गोडसे ने मारा क्योंकि गोडसे का हिन्दू धर्म संकुचित और गांधी का हिन्दू धर्म उदार था। उनके हिन्दुत्व में सर्वधर्म समभाव की भूमिका थी। ईश्वरीय करुणा थी। संतत्व था। देवत्व था। व्यापक उदात्त अध्यात्म का मूल्य था। विश्वात्मक भाव और भूमिका थी।

व्यापक भूमिका निभाने वाला इन्सान ही संत होता है। गांधीजी संत थे। वह बैरिस्टर जरूर थे, लेकिन उनकी वकालत ब्रिटिश सत्ता से भारत को आजादी दिलाने के काम आयी। अंग्रेज अधिकारियों के साथ चर्चा करते समय गांधीजी का बैरिस्टर जागृत रहता था। हरिजनों के पक्ष में पदयात्रा निकालते समय और भंगी का काम करते समय गांधीजी में बसा हुआ महात्मा जाग उठता था। किसान-मजदूरों को वेदनामुक्त करने का उनका आंदोलन मानव मुक्ति के ध्येयवाद से जुड़ा रहा। गांधीजी शोषणमुक्त समाज के पक्षधर थे। शासनमुक्त समाज भी उनका ध्येय था। फिर भी मार्क्स प्रणीत कम्युनिस्टों की नीति और नियम से गांधीवाद का संवाद असंभव है। क्योंकि कम्युनिस्ट लोग साध्य और साधन के संदर्भ में शुद्धता को गौण मानकर हिंसा का समर्थन करते हैं। मूलतः मार्क्सवाद हिंसा पर आधारित नहीं है, परंतु कम्युनिस्ट क्रांति का इतिहास हिंसा से जुड़ा है। इस कारण साम्यवाद और साम्ययोग में मौलिक अंतर है।

महात्मा गांधी और डॉ. अम्बेडकर का संघर्ष तात्विक रहा, वैयक्तिक नहीं था। फिर भी दोनों का कार्य परस्पर पूरक रहा। आज इन दोनों महापुरुषों के अनुयायी आपस में संघर्ष करते हैं। यह स्थिति एकात्म भारत के लिए घातक है। आखिर क्यों गांधी और अम्बेडकर के सपनों का देश साथ-साथ नहीं बन सकता? ❑

जेएनयू में शिक्षकों एवं छात्रों पर हुआ जानलेवा हमला कायराना तथा फासीवादी

–सर्व सेवा संघ

5 जनवरी 2020 को जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में घुसकर 50 से अधिक नकाबपोशों ने विश्वविद्यालय के शिक्षकों तथा छात्रों पर लोहे की छड़ों और लाठियों से जानलेवा हमले किये। हमले में छात्रसंघ की अध्यक्षा आइशी घोष का सिर फट गया है और वे बुरी तरह जख्मी हैं। हमलावर धारदार हथियारों से लैस थे। इस घटना में पुलिस की भूमिका भी संदेहास्पद है। दंगाइयों ने परिसर में तीन घंटे तक उत्पात मचाया। छात्रों का कहना है कि उस समय पुलिस वहां मौजूद थी, पर वह चुप रही। हमले के दौरान स्ट्रीट लाइट बंद कर दी गयी। नवम्बर 2019 में फीस वृद्धि के खिलाफ प्रदर्शन कर रहे जेएनयू के छात्रों के खिलाफ पुलिस द्वारा कथित लाठीचार्ज के दौरान भी लाइटें बंद कर दी गयी थीं। जेएनयू के गेट पर सुरक्षाकर्मी तैनात थे। इसका बावजूद हथियार के साथ इतनी बड़ी संख्या में लोगों को घुस जाना अनेक संदेहों का जन्म देता है।

हमले से पहले एक व्हाट्सएप मैसेज में कहा गया है कि वीसी अपना आदमी है। इससे साफ है कि यह हमला सुनियोजित था तथा इस हमले के पीछे वे लोग हैं, जिन्हें अभिव्यक्ति की आजादी और लोकतंत्र पसंद नहीं है। इनके काम करने का तरीका हमेशा फासीवादी रहा है। इन लोगों को हिटलर एवं मुसोलिनी से प्रेरणा मिलती है। इन्हीं लोगों ने सोचा था कि गांधी को गोली मार देने से गांधी का विचार खत्म हो जायेगा। पर ऐसा हुआ नहीं। वह फैलता ही जा रहा है।

सर्व सेवा संघ (अखिल भारत सर्वोदय मंडल) के अध्यक्ष महादेव विद्रोही ने एक प्रेस विज्ञप्ति में कहा है कि हिंसा का वही लोग सहारा लेते हैं, जिनका विश्वास लोकतंत्र में नहीं हैं। इस हिंसा के पीछे वे लोग हो सकते हैं, जो पिछले लंबे समय से जेएनयू में हिंसक गतिविधियों मे शामिल हैं तथा जिनकी छात्र संघ के पिछले चुनाव मे बुरी तरह हार हुई है। सर्व सेवा संघ जेएनयू में हुई इस हिंसा की तीव्र भर्त्सना करता है एवं वहां के छात्रों व शिक्षकों के प्रति अपनी एकजुटता प्रकट करता है। सर्व सेवा संघ इस हिंसा के विरोध, नागरिकता संशोधन अधिनियम, एनआरसी तथा एनपीआर के विरोध में बापू के बलिदान दिवस 30 जनवरी को सेवाग्राम आश्रम के बाहर सत्याग्रह उपवास करेगा। शाम 5.19 बजे, ठीक उस समय जब बापू का बलिदान हुआ था, सर्वधर्म प्रार्थना के साथ उपवास का समापन होगा।

श्रद्धांजलियां

ए वी स्वामी उड़ीसा के भीष्मपितामह थे

सर्वोदय आंदोलन के मूर्धन्य साथी और पूर्व सांसद ए वी स्वामी का गत 31 दिसंबर 2019 को 92 वर्ष की उम्र में देहांत हो गया। उड़ीसा के नवरंगपुर जिले में 1929 में उनका जन्म हुआ था। वे बेहद गरीब परिवार से थे, और बचपन से ही बड़े मेधावी थे। उन्होंने केमिकल इंजीनियरिंग की डिग्री प्राप्त की थी लेकिन विनोबाजी की प्रेरणा से सर्वोदय आंदोलन से जुड़ने के बाद उन्होंने आजीवन समाज सेवा करने का व्रत लिया और कभी नौकरी नहीं की। नवकृष्ण चौधरी के संपर्क में आने के बाद सर्वोदय की अनेक संस्थाओं को साथ जोड़कर उन्होंने गांधीवादी विकास की धारा से युवाओं को प्रभावित किया और आजीवन आदिवासियों की सेवा में लगे रहे। बांग्लादेश से आये शरणार्थियों के पुनर्वास के काम में भी उनका समर्पण उल्लेखनीय है। पश्चिम उड़ीसा में उन्होंने ऑक्सफैम का काम भी संभाला। उड़ीसा के सूखा प्रभावितों और बंधुआ मजदूरों के कल्याण के लिए उनकी सेवाओं के चलते उड़ीसा के सामाजिक क्षेत्रों में उन्हें भीष्म पितामह की संज्ञा दी गयी। भूदान आंदोलन के दौरान उनके काम से प्रभावित केन्द्र सरकार ने उन्हें उड़ीसा के बैपारीगुड़ा ब्लॉक का गैरसरकारी बीडीओ बनाया। यह सम्मान पाने वाले वे पहले व्यक्ति थे। उड़ीसा सरकार ने उनके व्यक्तित्व का सम्मान करते हुए 2012 में उन्हें निर्दल सदस्य के तौर पर राज्य सभा में भेजा। वर्ष 2018 में वे राज्यसभा की सेवा से मुक्त हुए। 2015 में दिल्ली में आयोजित सर्वोदय समाज सम्मेलन की व्यापक सफलता के लिए उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

जेपी आंदोलन के साथी राजेन्द्र कुमार नहीं रहे

जेपी आंदोलन और छात्र युवा संघर्ष वाहिनी से जुड़े साथी राजेन्द्र कुमार का 2 जनवरी को निधन हो गया। वह लंबे समय से बीमार चल रहे थे। उनकी किडनी की बीमारी का इलाज चल रहा था। अपने पथराकुल्ही आवास पर उन्होंने अंतिम सांस ली। वह अपने पीछे पत्नी, पुत्र व पुत्री छोड़ गये हैं। जिला शतरंज संघ के उपाध्यक्ष रहे राजेन्द्र जब मैट्रिक में थे, उसी वक्त जेपी आंदोलन से जुड़ गये थे। 1974 में घंटी बजाकर स्कूल बंद कराने से लेकर पटना विधानसभा के सामने जेल भरो आंदोलन तक उन्होंने सक्रिय भागीदारी निभायी। जेपी की विचारधारा को आत्मसात करने वाले राजेन्द्र कुमार 1974 में एक माह तक पटना जेल में भी बंद हुए थे। 15 अगस्त 1975 को धनबाद पुलिस लाइन में बिहार सरकार के तत्कालीन मंत्री राजरतन राम को झंडा फहराने से रोकने के आंदोलन में भी उन्होंने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था।

समाजसेवी देवी सिंह का निधन

मेरठ सर्वोदय मंडल के पूर्व अध्यक्ष देवी सिंह का स्वर्गवास 11 दिसंबर 2019 को हो गया। उन्होंने मेरठ कॉलेज से भूगोल परास्नातक की शिक्षा प्राप्त की थी। वे शांत-चित्त, स्पष्टवादी गांधी चिन्तक थे। उन्हें भारत ज्ञान विज्ञान समिति द्वारा आयोजित साक्षरता अभियान तथा ग्रामीण क्षेत्रों में निरंतर क्रीड़ा प्रतियोगिताएं आयोजित कराने के लिए भी जाना जाता है। उन्होंने अनेक बार सेवाग्राम व पवनार आश्रम, वर्धा, गांधी शांति प्रतिष्ठान, नयी दिल्ली सहित अनेक संस्थाओं के कार्यक्रमों में सहभागिता की। वे सर्वोदय मंडल, मेरठ के अध्यक्ष भी रहे। वे गांधी-150 जयंती अभियान, मेरठ में होने वाले आयोजनों के सूत्रधार रहे। **–राजेन्द्र प्रसाद**

सभी दिवंगतों सर्व सेवा संघ दिवंगत के सम्मान में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है और उनकी आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करता है।

30 जनवरी को सेवाग्राम में सामूहिक उपवास

विगत 5 जनवरी को जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के परिसर में घुसकर नकाबपोश हमलावरों द्वारा छात्र-छात्राओं के साथ की गयी वहशियाना मारपीट के बाद सरकार व पुलिस की अकर्मण्यता से जनमानस में गहरा क्षोभ व्याप्त है। देश पहले से ही सीएए, एनआरसी और एनपीआर के खिलाफ आंदोलनरत है। इन हालात ने जनता और सरकार के बीच एक अविश्वास का वातावरण बनाया है। लोकशाही में चुनी हुई सरकारों पर मतदाता का भरोसा खत्म होना, लोकशाही के लिए अच्छे संकेत नहीं हैं। ऐसे समय में, जब जनता ने सड़कों पर उतरकर अपनी आवाज सत्ता तक पहुंचाने का निर्णय लिया है, तब हम चुप कैसे रह सकते हैं। जनता की आवाज को समर्थन देने तथा देश व देश के भविष्य के सामने उपस्थित साजिशों और हिंसक वातावरण के निवारण के लिए सर्व सेवा संघ ने तय किया है कि बापू की शहादत के दिन आगामी 30 जनवरी को सेवाग्राम आश्रम के बाहर सामूहिक उपवास किया जायेगा। उपवास सुबह से शुरू होगा और संध्या 5 बजकर 19 मिनट पर (गांधीजी के हत्या के समय पर) समापन होगा। सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव विद्रोही भी उपवास में शामिल होंगे। आप सभी से आग्रह है कि इस सामूहिक उपवास में अधिक से अधिक संख्या में शामिल हों।

सीतामढ़ी चीनी मिल का घेराव

संयुक्त किसान संघर्ष मोर्चा, सीतामढ़ी के आह्वान पर बड़ी संख्या में रीगा चीनी मिल क्षेत्र के किसानों ने बढ़ती उत्पादन लागत के बावजूद केन्द्र तथा राज्य सरकार द्वारा गन्ना मूल्य में कोई बढ़ोत्तरी नहीं किये जाने, बाढ़ से बर्बाद फसल क्षति की भरपाई नही किये जाने और एक वर्ष के बाद भी 100 करोड़ रूपये का भुगतान नही होने से आक्रोशित होकर मिल का घेराव किया तथा गेट को जाम करके पूरी आवाजाही को 5 घंटे तक ठप्प कर दिया। सरकार से 600 रूपये प्रति क्विंटल गन्ना मूल्य तय करने अथवा गन्ना मूल्य पर 300 रूपये प्रति क्विंटल अनुदान देने, गन्ना मूल्य के बकाये का ब्याज सहित भुगतान करने, किसानों की लिमिट की राशि का भुगतान होने तक पूर्व की भांति डिस्टीलियरी से प्राप्त राशि का भी 85% किसानों के खाते में भेजने, मिल के पास उपलब्ध चीनी की एकमुश्त बिक्री कराकर, भुगतान कराने एवं मनुष्मारा नदी को प्रदूषण से बचाने की मांग की गई।

मिल के गेट पर ही मोर्चा के रीगा अध्यक्ष पारसनाथ सिंह की अध्यक्षता में आयोजित सभा में मोर्चा सहित जिले के विभिन्न किसान संगठन, किसान सभा, संतोष कुमार, डॉ. आनन्द किशोर, रामतपन सिंह, महासचिव आफताब अंजुम आदि शामिल थे। किसान नेताओं ने किसान आन्दोलन को तेज करने के संकल्प के साथ-साथ अपनी समस्याओं के समाधान के लिए जनप्रतिनिधियों पर भी दबाव बनाने की किसानों से अपील की। सभा के बाद मिल बाजार में किसानों का जूलूस शहीद स्मारक पहुंचा तथा सुरेन्द्र व रफीक अमर रहे के नारो के साथ माल्यार्पण तथा पुष्पाजलि अर्पित करके शहीद को श्रद्धांजलि दी गयी।**–आनंद किशोर**

जोधपुर में डॉ. शोभना राधाकृष्ण द्वारा गांधी-कथा

ग्रामीण विकास विज्ञान समिति एवं गांधी-विचार युवा वाहिनी के संयुक्त तत्त्वावधान तथा डॉ. रवि चोपड़ा के निर्देशन में डॉ. शोभना राधाकृष्ण द्वारा गांधी कथा का आयोजन जोधपुर के गांवों में किया गया। 19 दिसंबर को ग्राविस के गगाड़ी केन्द्र पर गांधी कथा का आयोजन हुआ। डॉ. शोभना राधाकृष्ण ने गांधी कथा के माध्यम से गांधीजी के जीवन से जुड़े विभिन्न अनछुए पहलुओं, प्रसंगों पर बात की तथा गांधीजी के राजस्थान प्रवास और उसके प्रभाव की चर्चा की। श्रोताओं ने गांधी धुन शोभना जी के साथ दोहराई। इस दौरान गांधी पर बनी शार्ट फिल्म भी दिखायी गयी। शशि त्यागी ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय का प्रसंग सुनाया और कस्तूरबा जी के बारे में बात की। स्कूली विद्यार्थियों के लिए गांधी क्विज का आयोजन किया गया तत्पश्चात् ग्रामीणों ने शोभना जी से चरखा चलाना सीखा। कार्यक्रम में बड़ी संख्या में ग्रामीण उपस्थित थे। मंच का संचालन रमेश परिहार ने किया।

20 दिसंबर को कलरा शरीफ स्थित ग्राविस केन्द्र पर भी गांधी कथा का आयोजन किया गया। शोभना जी ने गांधी कथा के माध्यम से गांधी दर्शन-विचार पर बात की और कहा कि हमें हर धर्म को पढ़ना चाहिए तथा सबका सम्मान करना चाहिए। गांधीजी ने जो प्रायोगिक जीवन जिया, वह आज हमें दिशा देता है। गांधी क्विज में सही जवाब देने वाले विद्यार्थियों को गांधी साहित्य से पुरस्कृत किया गया। ग्रामीणों, विद्यार्थियों ने चरखा चलाने का प्रशिक्षण लिया। स्थानीय कलाकारों ने कबीरदास जी के भजन सुनाये। 21 दिसंबर को ग्राविस एवं गांधी शांति प्रतिष्ठान केन्द्र जोधपुर के संयुक्त तत्त्वावधान में गांधी कथा का आयोजन गांधी भवन जोधपुर में भी किया गया। **–शशि त्यागी**

स्वतंत्रता सेनानी का उपवास

हारोहल्ली श्रीनिवास डोरेस्वामी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी रहे हैं। 101 वर्ष की उम्र में इस वयोवृद्ध सेनानी ने नागरिकता संशोधन अधिनियम और राष्ट्रीय नागरिकता पंजी के खिलाफ जब उपवास की घोषणा की तो लोग आश्चर्यचकित रह गये। आजादी के आंदोलन की शुरुआत में अंग्रेजों से लड़ने के लिए ये बम बनाया करते थे। बाद में उनका हृदय परिवर्तन हुआ और उन्होंने हिंसा का रास्ता छोड़ दिया। वे गांधीजी की अहिंसा के रास्ते पर चल पड़े। एक शताब्दी का जीवन जी चुके डोरेस्वामी आजीवन समाज सेवा से जुड़े रहे हैं।

जब सीएए के खिलाफ देशभर में आंदोलन शुरू हुआ तो उन्होंने भी बंगलोर के फ्रीडम पार्क में अपना उपवास शुरू कर दिया। भारत छोड़ो से लेकर भारत जोड़ो तक की लंबी यात्रा के पथिक डोरेस्वामी के इस उम्र में उपवास की घोषणा से सभी सन्न रह गये। 4 जनवरी को जब उन्होंने नारियल पानी के साथ अपना उपवास समाप्त किया तो उनकी वह तस्वीर देशभर में वायरल हो गयी। उल्लेखनीय है कि एच एस डोरेस्वामी अखिल भारत सर्वोदय मंडल की कर्नाटक इकाई के अध्यक्ष रह चुके हैं।

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

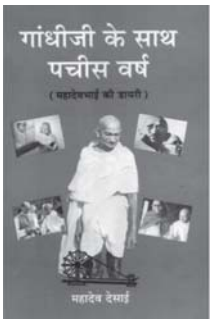

महादेव भाई की डायरी

महादेवभाई और गांधीजी का संबंध दो अभिन्न हृदयों का संबंध था। महादेवभाई की डायरी का मतलब है, गांधीजी की डायरी। महादेवभाई की इन डायरियों में आपको गांधीजी की राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय नेताओं से मुलाकात मिलेगी। गांधीजी ने बीमारी में, सन्निपात में कुछ कहा होगा, तो उसका उल्लेख भी उसमें मिलेगा। गांधीजी के ऐतिहासिक और जगत्प्रसिद्ध व्याख्यान इन डायरियों में हैं। अगर राह चलते गांधीजी ने किसी बच्चे के साथ थोड़ा विनोद किया है, तो वह भी इन डायरियों में प्रतिबिम्बित हुआ है। इतिहास में इस प्रकार के डायरी-लेखन का नमूना सिर्फ एक ही मिलता है और वह है, अंग्रेज विद्वान बॉसवेल का, जिन्होंने डॉ. जॉनसन के जीवन के बारे में लिखा है। लेकिन डॉ. जॉनसन के लेख और महादेवभाई की डायरियों में उतना ही अंतर है, जितना डॉ. जॉनसन और गांधीजी के जीवन में।

अपने अनेक कामों के बीच जब कभी थोड़ी-सी फुरसत मिली है, महादेवभाई ने गांधीजी के वचनों के उपरांत, अन्य सामग्री से अपनी डायरियों को समृद्ध किया है। महादेवभाई के समान विशाल और गहरा अध्ययन करने वाले लोग हमारे देश में कम ही मिलेंगे। समय-समय पर उन्होंने डायरियों में अपने व्यापक अध्ययन के अलावा कुछ आलोचना भी लिखी है। कभी किसी नये स्थान पर गये, तो उस स्थान का वर्णन भी किया है। कभी किसी नये व्यक्ति से मिले, तो उसका थोड़ा चरित्र-चित्रण भी किया है और इन छोटे-छोटे परिच्छेदों में महादेवभाई की उच्चकोटि की साहित्यिक प्रतिभा प्रकट हुई है।

बापू की अंतिम झांकी

बापू के जीवन के अंतिम दिन भारतीय इतिहास के अमिट अध्याय हैं। इन पृष्ठों पर भारत की तत्कालीन स्थिति, बापू की वेदना और आक्रमकता को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। बापू के अंतिम दिनों में उनके निकट रहने का सौभाग्य पाने वालों में मनु बहन गांधी का नाम प्रमुख है। बापू की यह अंतिम झांकी मनु बहन की ही कलम से निकली है। वे लिखती हैं कि 'बापू के अंतिम समय में उनके निकट रहने का सौभाग्य तो मुझे मिला, पर यह नहीं पता था कि अपनी आंखों के सामने मुझे बापू का निर्वाण भी देखना होगा। यह बापू के जीवन के अंतिम एक महीने की डायरी है। मेरे लेखन में जो कुछ भी मधुर और श्रेयस्कर रहा है, वह सब बापू का ही है। दरअसल मेरे शब्दों में स्वयं बापू ही उपस्थित हुए हैं। बापू ने कहा था कि मेरा जीवन ही मेरा संदेश है। इसलिए इस पुस्तक में जो कोई भी घटना प्रसंगवश आयी है, उसमें मैंने हर तरह से सावधानी बरती है कि कोई महत्त्वपूर्ण बात या नाम छूट न जाये। इसी तरह इस बात का भी ध्यान रखा है कि इतने लंबे विवरण में किसी को अपने साथ अन्याय होता हुआ न महसूस हो। इस पुस्तक में बापू के महाप्रयाण तक का दैनिक विवरण दिया गया है। जितना कुछ मैंने अपनी आंखों से देखा, उसे ही संक्षेप में देकर यह झांकी पूरी की है।'

बापू की यह अंतिम झांकी मनुबहन गांधी की डायरी का हिन्दी अनुवाद है। यह अनुवाद सर्व सेवा संघ ने प्रकाशित किया है।

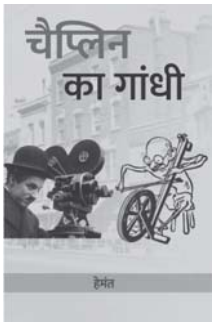

चैप्लिन का गांधी

यह उपन्यास सिर्फ उपन्यास नहीं है, एक इतिहास है जो किस्सागोई की शैली में लिखा गया है। पुस्तक में प्रस्तुत गंभीर वैचारिकी को बिना किसी जटिलता के सहज एवं सरल भाषा में व्यक्त किया गया है। न विन्यास का बोझ है और न ही कोई तिलिस्म। बस गांधी और चैप्लिन की तरह इसमें एक सहजता है, एक रवानी है। आवेग की प्रवणता है तो उद्दाम प्रवाह भी है। कथानक कभी झकझोरता है तो कहीं ठिकाना भी देता है। इस उपन्यास की अंतर्निहित दिलचस्पी का चुंबकत्व इतना शक्तिशाली है कि एक बार पढ़ना शुरू करने के बाद समाप्ति तक आप बेचैन ही रहेंगे।

यह उपन्यास कई प्रकार के आयामों को खुद में समेटे हुए है। पुस्तक की वैचारिकी की एक बानगी नमूने के लिए काफी है क्योंकि इससे अधिक उल्लेख का तो यहां अवसर भी नहीं है। चैप्लिन से गांधी कहते हैं—''कोई भी राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता अपनी ही कुछ कमजोरियों के कारण खोता है। और, ज्यों ही हम अपनी कमजोरियों को दूर कर लेते हैं, त्यों ही अपनी स्वतंत्रता पुनः प्राप्त कर लेते हैं। दुनिया में कोई भी देश अपने ऐच्छिक या अनैच्छिक सहयोग के बिना गुलाम नहीं बनाया जा सकता।'' भारत की गुलामी के कारणों को समझने का यह है गांधीवादी नजरिया, यह है गांधीवादी डिस्कोर्स। इस गांधीवादी डिस्कोर्स को विविध प्रसंगों, बिंबों, दृष्टांतों के जरिये स्पष्ट किया गया है। परदे पर एक के बाद एक, बदलते हुए दृश्यों की तरह। वास्तव में यह उपन्यास एक चित्रपट है जिसे पढ़कर आप अभिभूत भी हो सकते हैं, भावुक तो कई बार होंगे। दोनों पात्र अद्वितीय हैं।

ये तीनों पुस्तकें सर्व सेवा संघ प्रकाशन ने प्रकाशित की है। ये हमारे सभी रेलवे बुक स्टालों पर उपलब्ध हैं। आप अपना क्रयादेश सीधे सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-221001 के पते पर भी भेज सकते ह। डाक-खर्च अतिरिक्त देय होगा। **–प्रकाशक**

'Sarvodaya Jagat' Hindi Fortnightly
Registered under RNI No. 35495/78, Postal Registration No. VSI-(E) 04, Valid upto 31 December 2020
Issued by S.S.P.O. Varanasi (East Division)

हरिवंशराय बच्चन की दो की कविताएं

(1) आओ, बापू के अंतिम दर्शन कर जाओ

आओ, बापू के अंतिम दर्शन कर जाओ,
चरणों में श्रद्धांजलियाँ अर्पण कर जाओ,
यह रात आखिरी उनके भौतिक जीवन की,
कल उसे करेंगी
भस्म चिता की
ज्वालाएँ।

दांडी की यात्रा करने वाले चरण यही,
नोआखाली के संतप्तों की शरण यही,
छू इनको ही क्षिति मुक्त हुई चंपारन की,
इनके चापों ने
पापों के दल
दहलाए।

यह उदर देश की भूख जानने वाला था,
जन-दुख-संकट ही इसका नित्य निवाला था,
इसने पीड़ा बहु बार सही अनशन, प्रण की
आघात गोलियों
के ओढ़े
बाएँ-दाएँ।

यह छाती परिचित थी भारत की धड़कन से,
यह छाती विचलित थी भारत की तड़पन से,
यह तनी जहाँ, बैठी हिम्मत गोले-गन की
अचरज ही है,
पिस्तौल इसे जो
बिठलाए।

इन आँखों को था बुरा देखना नहीं सहन,
जो नहीं बुरा कुछ सुनते थे, ये वही श्रवण,
मुख यही कि जिससे कभी न निकला बुरा
वचन,
यह बंद-मूक
जग छलछिद्रों से
उकताए।

यह देखो बापू की आजानु भुजाएँ हैं,
उखड़े इनसे गोराशाही के पाए हैं,
लाखों इनकी रक्षा-छाया में आए हैं,
ये हाथ सबल
निज रक्षा में
क्यों सकुचाए।

यह बापू की गर्वीली, ऊँची पेशानी,
बस एक हिमालय की चोटी इसकी सानी,
इससे ही भारत ने अपनी भावी जानी,
जिसने इनको वध करने की मन में ठानी,
उसने भारत की किस्मत पर फेरा पानी;
इस देश-जाति के हुए विधाता
ही बाएँ।

(2) 'हे राम' - खचित यह वही चौतरा, भाई

'हे राम' - खचित यह वही चौतरा, भाई,
जिस पर बापू ने अंतिम सेज डसाई,
जिस पर लपटों के साथ लिपट वे सोए,
गलती की हमने
जो वह आग बुझाई।

पारसी अग्नि जो फारस से लाए,
हैं आज तलक वे उसे ज्वलंत बनाए,
जो आग चिता पर बापू के जागी थी
था उचित उसे
हम रहते सदा जगाए।

है हमको उनकी यादगार बनवानी,
सैकड़ों सलाहें देंगे पंडित-ज्ञानी,
लेकिन यदि हम वह ज्वाल जगाए रहते,
होती उनकी
सबसे उपयुक्त
निशानी।

तम के समक्ष वे ज्योति एक अविचल थे,
आँधी-पानी में पड़कर अडिग-अटल थे,
तप की ज्वाला के अंदर पल-पल जल-जल
वे स्वयं अग्नि-से
अकलुष थे,
निर्मल थे।

यह ज्वाला हमको उनकी याद दिलाती,
यह ज्वाला हमको उनका पथ दिखलाती,
यह ज्वाला भारत के घर-घर में जाती,
संदेश अग्निमय
जन-जन को
पहुँचाती।
पुश्तहापुश्त यह आग देखने आती,
इससे अतीत की सुधियाँ सजग बनाती,
भारत के अमर तपस्वी की इस धूनी से
ले भभूत
अपने सिर-माथ
चढ़ाती।

पर नहीं आग की बाकी यहाँ निशानी,
प्रह्लाद-होलिका की फिर घटी कहानी,
बापू ज्वाला से निकल अछूते आए,
मिल गई राख-
मिट्टी में चिता
भवानी।

अब तक दुहरातीं मस्जिद की मीनारें,
अब तक दुहरातीं घर घर की दीवारें,
दुहराती पेड़ों की हर तरु कतारें,
दुहराते दरिया के जल-कूल-कगारे,
चप्पे-चप्पे इस राजघाट के रटते
जो लगे यहाँ थे चिता-शाम के नारे-
हो गए आज बापू अमर हमारे,
हो गए आज बापू अमर हमारे! ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए प्रकाशक अरविन्द अंजुम द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार।